जन्म
और मृत्यु से परे

जन्म और मृत्यु से परे

श्री ए० सी० भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद
संस्थापक आचार्य : अन्तर्राष्ट्रीय कृष्ण भावनामृत संघ

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट

हरे कृष्ण लैंड, गाँधी ग्राम रोड,

जूहू, बम्बई—४९

कृष्णकृपाश्रीमूर्ति श्रीमद् भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद द्वारा विरचित वैदिक-ग्रन्थ-रत्न:—

श्रीमद्भगवद्गीता यथारूप
श्रीमद्भागवत स्कन्ध १-१० (५०-खण्ड)
श्रीचैतन्य चरितामृत (१७-खण्ड)
श्रीचैतन्य महाप्रभु का शिक्षामृत
भक्तिरसामृतसिन्धु
उपदेशामृत
श्री ईशोपनिषद्
अन्य लोकों की सुगम यात्रा
कृष्णभावना : परमयोग
भगवान् श्रीकृष्ण का लीलामृत (३-खण्ड)
पारमार्थिक प्रश्नोत्तर
वैदिक आलोक में पाश्चात्य दर्शन (२-खण्ड)
देवहूतिनन्दन भगवान् कपिल का शिक्षामृत
प्रह्लाद महाराज की भागवत-शिक्षा
रसराज श्रीकृष्ण
जीवन का स्रोत चेतन है
योग की पूर्णता
जन्म-मृत्यु से परे
श्रीकृष्ण की ओर
कृष्णभावना : अनुपम भेंट
गीतार गान (बंगाली)
राजविद्या
कृष्णभावना की प्राप्ति
भगवत्-दर्शन पत्रिका (संस्थापक)
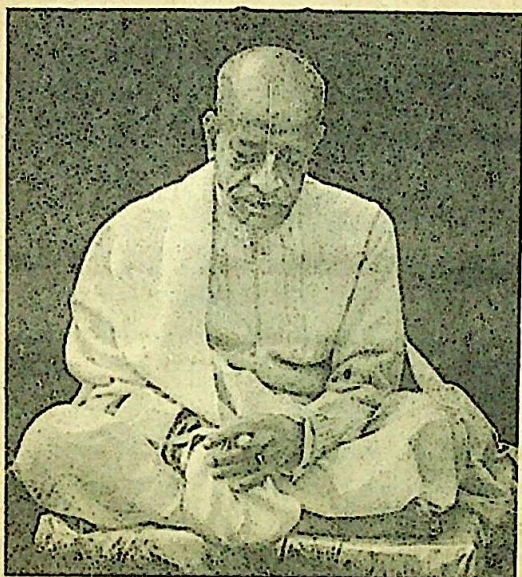
लेखक-परिचय

कृष्णकृपाश्रीमूर्त्ति श्री श्रीमद् ए. सी भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद का जन्म १८९६ ई. में भारत के कलकत्ता नगर में हुआ था। अपने गुरु महाराज श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी से १९२२ में कलकत्ता में उनकी प्रथम भेंट हुई। एक सुप्रसिद्ध धर्म तत्त्ववेत्ता, अनुपम प्रचारक, विद्वान्-भक्त, आचार्य एवं चौसठ गौडीय मठों के संस्थापक श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती को ये सुशिक्षित नवयुवक प्रिय लगे और उन्होंने वैदिक ज्ञान के प्रचार के लिए अपना जीवन उत्सर्ग करने की इनको प्रेरणा दी। श्रील प्रभुपाद उनके छात्र बने और ग्यारह वर्ष बाद (१९३३ ई. में) प्रयाग (इलाहाबाद) में विधिवत् उनके दीक्षा-प्राप्त शिष्य हो गये।

अपनी प्रथम भेंट, १९२२ में ही श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने श्रील प्रभुपाद से निवेदन किया था कि वे अँग्रेजी भाषा के माध्यम से वैदिक ज्ञान का प्रसार करें। आगामी वर्षों में श्रील प्रभुपाद ने श्रीमद्भगवद्गीता पर एक टीका लिखी, गौड़ीय मठ के कार्य में सहयोग दिया तथा १९४४ में बिना किसी की सहायता के एक अँग्रेजी

पाक्षिक पत्रिका आरम्भ की, स्वयं ही उसका सम्पादन, पाण्डुलिपि का टङ्कण (टाइपिंग) और मुद्रण सामग्री को देखा। उन्होंने एक-एक प्रति निःशुल्क बाँटकर भी इसके प्रकाशन को वर्तमान रखने के लिए संघर्ष किया। एक बार आरम्भ होकर फिर यह पत्रिका कभी बन्द नहीं हुई; अब यह उनके शिष्यों द्वारा पश्चिमी देशों में भी चलाई जा रही है।

श्रील प्रभुपाद के दार्शनिक ज्ञान एवं भक्ति की महत्ता पहचान कर 'गौड़ीय वैष्णव समाज' ने १९४७ में उन्हें 'भक्तिवेदान्त' की उपाधि से सम्मानित किया। १९५० ई. में चौवन वर्ष की अवस्था में श्रील प्रभुपाद ने गृहस्थ जीवन से अवकाश लिया और चार वर्ष बाद वानप्रस्थ ले लिया जिससे वे अपने अध्ययन और लेखन के लिये अधिक समय दे सकें। श्रील प्रभुपाद ने तदनन्तर श्रीवृन्दावन धाम की यात्रा की जहाँ वे बड़ी ही सा[illegible] परिस्थितियों में मध्यकालीन ऐतिहासिक श्री राधा दामोदर मन्दिर में रहे। वहाँ वे अनेक वर्षों तक गम्भीर अध्ययन एवं लेखन में संलग्न रहे। १९५९ में उन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया। श्री राधा दामोदर मन्दिर में ही श्रील प्रभुपाद ने अपने जीवन के सबसे श्रेष्ठ और महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का आरम्भ किया था। वह ग्रन्थ था अठारह हजार श्लोक संख्या के श्रीमद्भागवत पुराण का अनेक खण्डों में अँग्रेजी में अनुवाद और व्याख्या। वहीं उन्होंने 'अन्य लोकों की सुगम यात्रा' नामक पुस्तिका भी लिखी थी।

श्रीमद्भागवत के प्रारम्भ के तीन खण्ड प्रकाशित करने के बाद श्रील प्रभुपाद १९६५ ई. में अपने गुरुदेव का धर्मानुष्ठान पूरा करने के लिये संयुक्त राज्य अमेरिका गये। अन्ततः श्रील प्रभुपाद ने भारतवर्ष के श्रेष्ठ दार्शनिक और धार्मिक ग्रन्थों के प्रामाणिक अनुवाद, टीकाएँ एवं संक्षिप्त अध्ययन-सार के रूप में साठ से अधिक ग्रन्थ रत्न प्रस्तुत किये।

१९६५ में जब श्रील प्रभुपाद एक मालवाहक जलयान द्वारा प्रथम बार न्यूयॉर्क नगर में आये तो उनके पास एक पैसा भी नहीं था। इसके पश्चात् कठिनाई भरे लगभग एक वर्ष के बाद जुलाई १९६६ में उन्होंने 'अन्तर्राष्ट्रीय श्रीकृष्णभावनामृत संघ' की स्थापना की। १४ नवम्बर १९७७ को, कृष्ण-बलराम मन्दिर, श्रीवृन्दावन धाम में अप्रकट होने पूर्व तक श्रील प्रभुपाद ने अपने कुशल मार्ग निर्देशन के कारण इस संघ को विश्वभर में सौ से अधिक मन्दिरों के रूप में आश्रमों, विद्यालयों, संस्थाओं और कृषि-क्षेत्रों का बृहद् संगठन बना दिया है।

१९६५ में श्रील प्रभुपाद ने प्रयोग के रूप में. वैदिक समाज के आधार पर पश्चिमी वर्जीनिया की पहाड़ियों में एक नव वृन्दावन की स्थापना की। एक हजार एकड़ से भी अधिक के इस समद्ध नव-वन्दावन के कृषि क्षेत्र से प्रोत्साहित होकर उनके

शिष्यों ने संयुक्त राज्य अमेरिका तथा अन्य देशों में भी ऐसे अनेक समुदायों की स्थापना की।

१९७२ ई. में श्रील प्रभुपाद ने डल्लास, टेक्सस में गुरुकुल विद्यालय की स्थापना द्वारा पश्चिमी देशों में प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा की वैदिक प्रणाली का सूत्रपात किया। तब से, उनके निर्देशन के अनुसार श्रील प्रभुपाद के शिष्यों ने सम्पूर्ण विश्व में दस से अधिक गुरुकुल खोले हैं। भक्तिवेदान्त स्वामी गुरुकुल, श्रीवृन्दावन धाम इनमें सर्वप्रमुख है।

श्रील प्रभुपाद ने श्रीधाम-मायापुर, पश्चिम बंगाल में एक विशाल अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र के निर्माण की प्रेरणा दी है। यहीं पर वैदिक साहित्य के अध्ययनार्थ सुनियोजित संस्थान की योजना है, जो अगले दस वर्ष तक पूर्ण हो जायेगा। इसी प्रकार श्रीवृन्दावन धाम में भव्य कृष्ण-बलराम मन्दिर और अन्तर्राष्ट्रीय अतिथि भवन का निर्माण हुआ है। ये वे केन्द्र हैं जहाँ पाश्चात्य लोग वैदिक संस्कृति का मूल रूप से प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त कर सकते हैं। बम्बई में भी श्री राधारासबिहारीजी मन्दिर के रूप में एक विशाल सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक केन्द्र का विकास हो चुका है। इसके अतिरिक्त भारत में बारह अन्य महत्वपूर्ण स्थानों में हरे कृष्ण मन्दिर खोलने की योजना कार्याधीन है।

किन्तु, श्रील प्रभुपाद का सबसे बड़ा योगदान उनके ग्रन्थ हैं। ये ग्रन्थ विद्वानो द्वारा अपनी प्रमाणिकता, गम्भीरता और स्पष्टता के कारण अत्यन्त मान्य है और अनेक महाविद्यालयों में उच्चस्तरीय पाठ्य ग्रन्थों के रूप में प्रयुक्त हैं। श्रील प्रभुपाद की रचनाएँ अट्ठाईस भाषाओं में अनूदित हैं। १९७२ में केवल श्रील प्रभुपाद के ग्रन्थों के प्रकाशन के लिए स्थापित भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट, भारतीय धर्म और दर्शन के क्षेत्र में विश्व का सबसे बड़ा प्रकाशक हो गया है। इस ट्रस्ट का एक अत्यधिक आकर्षक प्रकाशन श्रील प्रभुपाद द्वारा केवल अठारह मास में पूर्ण की गई उनकी एक अभिनव कृति है जो बंगाली धार्मिक महाग्रन्थ श्री चैतन्य चरितामृत का सत्तरह खण्डों में अनुवाद और टीका है।

बारह वर्षों में, अपनी वृद्धावस्था की चिन्ता न करते हुए व्याख्यान-पर्यटन के रूप में श्रील प्रभुपाद ने विश्व के छहों महाद्वीपों की चौदह परिक्रमाएँ कीं। इतने व्यस्त कार्यक्रम के रहते हुए भी श्रील प्रभुपाद की उर्वरा लेखनी अविरत चलती था। उनकी रचनाएँ वैदिक दर्शन, धर्म, साहित्य और संस्कृति के एक यथार्थ पुस्तकालय का निर्माण करती है।

इस ग्रन्थ की विषय-वस्तु में रुचिवान् पाठकों को अन्तर्राष्ट्री
श्रीकृष्णभावनामृत संघ अपने निम्नलिखित भारतीय केन्द्रों से सम्पर्क तथ
पत्र-व्यवहार करने के लिए आमन्त्रित करता है:

अन्तर्राष्ट्रीय श्रीकृष्णभावनामृत संघ

१. हरे कृष्ण लैण्ड, जुहू, बम्बई—४०००४९

२. २१/ए, फिरोज गाँधी रोड, नई दिल्ली—११००२४

३. श्रीकृष्ण बलराम-मन्दिर, भक्तवेदान्त स्वामी मार्ग, रमणरेती वृन्दाव
(मथुरा उ. प्र.) दूरभाष: १७८

४. हरे कृष्ण लैण्ड, नमपल्ली स्टेशन रोड, हैदराबाद—५०००१
(आ. प्र.

५. इस्कोन, हरे कृष्ण लैण्ड, दक्षिण मार्ग, नं. ५६६ सेक्टर, ३६-
चण्डीगढ़ (पंजाब)

६. ७, कैलाश सोसाइटी, आश्रम रोड, अहमदाबाद (गुजरात)

७. ३६, क्रिसेन्ट रोड बंगलोर—१

८. ३, एल्बर्ट रोड, कलकत्ता—७०००१७ (पं बंगाल)

९. श्रीमायापुर चन्द्रोदय मन्दिर, पो. श्रीमायापुर धाम
(नदिया, पं. बंगाल

भक्ति वेदान्त बुक ट्रस्ट, हरेकृष्ण लैंड, जुहू—बंबई ४९

विषय सूची

(पृष्ठाङ्क १-६४)

१
हम यह शरीर नहीं हैं

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ।।
(भ. गी. २:३०)

"हे भरत के वंशज ! इस शरीर में जो रहता है वह सनातन है और उसकी हत्या नहीं की जा सकती है, इसलिए किसी भी जीव के लिए दुःख करने की आवश्यकता नहीं है।"

आत्मज्ञान का पहला कदम, अपने को शरीर से भिन्न समझना है। "मैं यह शरीर नहीं हूँ, बल्कि आत्मा हूँ," यह जानना हर एक के लिए अनिवार्य है जो मृत्यु से ऊपर चढ़ कर वैकुण्ठ लोक में प्रवेश करना चाहते हैं। केवल कहने की बात नहीं है कि मैं यह शरीर नहीं हूँ, बल्कि वास्तविकता में अनुभव करने की बात है। यह इतना सरल नहीं है जितना देखने में लगता है। यद्यपि हम यह शरीर नहीं हैं, एक पवित्र आत्मा हैं, फिर भी किसी प्रकार शरीर के बन्धन में बँधे हुए हैं। यदि हम मृत्यु को पार करने वाली स्वतन्त्रता और सुख चाहते हैं तो हमें अपने आप को अपने शुद्ध स्वरूप भावनामय आत्मा में स्थिर करना और रहना होगा।

शरीर को अपना समझ कर सुख का जो हमारा ख्याल है वह एक दुःस्वप्न जैसा है। कुछ विचारक कहते हैं कि इस स्वप्न जैसी शारीरिक पहचान की स्थिति की चिकित्सा कोई

भी कर्म न करना ही है। क्योंकि ये सांसारिक क्रियाओं की वजह से ही हमें यह सब दुःख प्राप्त हुआ है, इसलिए वे कहते हैं कि सभी क्रियायें बन्द कर देनी चाहिए। उनकी पूर्णता की चोटी बौद्धों का निर्वाण है जिसमें कोई कार्य नहीं किया जाता है। बुद्ध ने सदैव यही कहा कि सांसारिक तत्वों के योग से यह शरीर उत्पन्न हुआ है और यदि किसी तरह इन तत्वों को अलग कर दें, या नाश कर दें तो सभी दुःख दूर हो जायेंगे। यदि कर-अधिकारी हमारा बड़ा घर होने के कारण हमें बहुत परेशान करे तो इस समस्या का सीधा-सादा हल मकान को नष्ट कर देना ही है। परन्तु भगवद् गीता कहती है कि भौतिक शरीर ही सब कुछ नहीं है। इन तत्वों के संयोग के परे आत्मा है और आत्मा का लक्षण चेतना है।

चेतना को नहीं नकारा जा सकता है। बिना चेतना का शरीर मरा हुआ शरीर है। जैसे ही शरीर से चेतना निकाल दी जाती है, मुंह बोल नहीं सकता है, आँख देख नहीं सकती हैं और न कान सुन ही सकते हैं। इस बात को एक बच्चा भी समझ सकता है। यह सत्य है कि शरीर के जीवंत होने के लिए चेतना अनिवार्य है। यह चेतना क्या है? जैसे अग्नि का लक्षण गर्मी और धुआँ है वैसे ही आत्मा का लक्षण चेतना है। आत्मा की शक्ति चेतना के रूप में व्यक्त होती हैं। वास्तव में चेतना ही आत्मा के अस्तित्व का परिणाम है। यह भगवद् गीता का ही विचार नहीं बल्कि सभी वैदिक साहित्य का सारांश है।

शंकराचार्य के संप्रदाय के निर्विशेषवादी और कृष्ण भगवान से आई हुई गुरु-परम्परा के हम वैष्णव लोग आत्मा के अस्तित्व को समझते हैं, परन्तु बुद्ध मत के विचारक इसे नहीं समझते हैं। बुद्ध मतवाले कहते हैं कि भौतिक पदार्थों के मिश्रण की किसी विशेष स्थिति से चेतना उत्पन्न होती है। परन्तु इस विचार का खण्डन इस तरह से किया जा सकता है कि हमारे पास सभी भौतिक पदार्थ होने पर भी हम चेतना उत्पन्न नहीं कर सकते हैं। मरे हुए व्यक्ति के शरीर में सभी तत्व उपस्थित होते हैं, परन्तु हम उस व्यक्ति में चेतना जाग्रत नहीं कर सकते हैं। यह शरीर यन्त्र की भाँति नहीं है। जब यन्त्र का कोई भाग टूट जाता है तो हम उसे बदल सकते हैं और यन्त्र फिर काम करेगा; परन्तु जब शरीर टूट जाता है, चेतना शरीर छोड़ देती है तो टूटे हुए भाग को बदलने की और चेतना जाग्रत करने की कोई सम्भावना नहीं है। आत्मा शरीर से भिन्न है, जब तक आत्मा है शरीर चलता है। परन्तु आत्मा की अनुपस्थिति में शरीर के चलने की कोई सम्भावना नहीं है।

क्योंकि हम आत्मा को अपनी इन्द्रियों से नहीं देख पाते हैं इसलिए हम उसे नहीं मानते हैं। परन्तु वास्तव में अनेक चीजें हैं जिन्हें हम नहीं देख सकते हैं। हम हवा नहीं देख सकते हैं, रेडियो की तरगें या शब्द या ध्वनि भी नहीं देख सकते हैं और न हम अपनी अपूर्ण आँखों से बहुत छोटे कीड़े ही देख सकते हैं, परन्तु इसके माने यह नहीं है कि वे वहाँ नहीं हैं। सूक्ष्मदर्शी यन्त्र तथा अनेक यन्त्रों से हम बहुत सी चीजें देख सकते

हैं जिन्हें हम पहले अपनी अपूर्ण इन्द्रियों से न देख सकने के कारण मना करते थे। क्योंकि आत्मा जो कि अणु के बराबर है और जिसे हम अपनी इन्द्रियों और यन्त्रों से नहीं देख सकते हैं, इससे हमें यह सारांश नहीं निकालना चाहिए कि आत्मा नहीं है। फिर भी इसे इसके लक्षणों और प्रभाव से देख सकते हैं। भगवद् गीता में कृष्ण भगवान कहते हैं कि हमारे सभी दुःख शरीर के साथ हमारी गलत पहचान के कारण हैं :

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ।। भ. गी. २:१४।।

"ओ कुन्ती के पुत्र! परिवर्तित होने वाली गर्मी और ठण्डक, सुख और दुःख का आना और उसका कुछ समय के बाद चला जाना शीत और ग्रीष्म ऋतुओं की तरह हैं जो कि इन्द्रियों के स्पर्श के कारण उत्पन्न होते हैं। हे भरत के वंशज! हर किसी को शान्ति पूर्वक इसे सहन करना चाहिए।"

ग्रीष्म ऋतु में पानी को छू कर हमें आनन्द आता है और शीत ऋतु में उसी पानी को छू कर हम काँपते हैं क्योंकि वह बहुत ठण्डा है। दोनों समय पानी वही है; परन्तु शरीर के स्पर्श से वह आनन्दमय या दुःखमय दीखता है सभी सुख और दुःख के अनुभव शरीर के कारण हैं। किसी विशेष परिस्थिति में शरीर और मन सुख और दुःख का अनुभव करता है। वास्तव में हम सुख के लिए तरस रहे हैं और आत्मा का स्वरूप सुख ही है। आत्मा वही परमेश्वर का अंश है जो कि सत्‌चिद् आनन्द विग्रह है—जो सनातन है, जिन्हें पूर्ण ज्ञान है और सदैव आनन्द

मय हैं। वास्तव में कृष्ण नाम, जो कि सांप्रदायिक नहीं है, के माने सबसे बड़ा आनन्द है। 'कृष्' के माने सबसे बड़ा और 'ण' के माने आनन्द। कृष्ण भगवान् आनन्द की अवधि हैं और उनके अंश होने के कारण हम भी आनन्द को तरसते हैं। समुद्र के एक बूंद पानी में समुद्र के सभी गुण होते हैं। इसलिए परमेश्वर के छोटे से अंश होते हुए भी हम में परमेश्वर के वही शक्तिशाली गुण हैं।

आत्मा अणु के बराबर इतनी छोटी होने पर भी हमारे सम्पूर्ण शरीर को आश्चर्यजनक विधियों से कार्य करने के लिए घूमती है। इस संसार में इतने शहर, सड़कें, भवन, इमारतें, बड़ी-बड़ी संस्कृतियाँ जो कुछ भी हम देखते हैं उसे किसने बनाया है? यह सब सूक्ष्म अलौकिक आत्मा जो शरीर में है उसने बनाया है। यदि ऐसी आश्चर्यजनक चीजें छोटी सी जीवात्मा से बन सकती हैं तो हम कल्पना भी नहीं कर सकते हैं कि सम्पूर्ण परमेश्वर क्या-क्या बना सकते हैं। सूक्ष्म जीवात्मा का स्वाभाविक लगाव उन्हीं गुणों में है जो कि परमेश्वर में हैं-ज्ञान, आनन्द और नित्यता-परन्तु भौतिक शरीर होने के कारण आत्मा की ये इच्छायें पूरी नहीं होतीं और उसे निराशा प्राप्त होती है। आत्मा की इच्छा को पूरा करने के बारे में भगवद् गीता में बताया गया है।

वर्तमान काल में हम एक अपूर्ण साधन (शरीर) से ज्ञान, आनन्द और सनातन जीवन पाने की चेष्टा कर रहे हैं। परन्तु वास्तव में इस भौतिक शरीर के होने के कारण हमारे इन

उद्देश्यों की उन्नति रुक रही है। इसलिए हमें शरीर से परे आत्मा के स्तर पर पहुँचना है। किताबी ज्ञान कि हम यह शरीर नहीं हैं, कार्य नहीं करेगा। हमें अपने आप को शरीर से अलग, उसके स्वामी के रूप में रखना होगा उसके नौकर के रूप में नहीं। यदि हम भली भाँति जानते हैं कि 'कार' कैसे चलायें तो वह हमें अच्छी सेवा देगी और यदि हम नहीं जानते हैं तो हम भयजनक स्थिति में पहुँच जायेंगे।

शरीर इन्द्रियों का बना है और इन्द्रियाँ सदैव अपने विषयों की भूखी हैं। जब आँख सुन्दर व्यक्ति को देखती हैं तो वह हमसे कहती हैं, "ओ ! वहाँ सुन्दर लड़की है, सुन्दर लड़का है, वहाँ चलो।" कान हमसे कहते हैं "ओ ! वहाँ बहुत अच्छा सङ्गीत है, सुनने चलो।" जीभ कहती है, "ओ ! वहाँ स्वादिष्ट भोजन का अच्छा भोजनालय है, वहाँ चलो।" इस प्रकार इन्द्रियाँ हमे एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर घसीट रही हैं और इसके कारण हम परेशान हैं।

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ॥ भ. गी. २:६७ ॥

"जैसे पानी में नाव तीव्र वायु के कारण बह जाती है, वैसे ही कोई एक इन्द्रिय जिस पर मन स्थिर होता है, वह मनुष्य की बुद्धि को हर लेती है।"

यह सीखना अनिवार्य है कि हम अपनी इन्द्रियों को किस प्रकार संयम में करें। 'गोस्वामी' उपाधि उसे दी जाती है जिसने यह सीख लिया है कि इन्द्रियों के स्वामी कैसे बनें।

'गो' के माने है इन्द्रियाँ और 'स्वामी' के माने है वश में करने वाला; इसलिए जिसने इन्द्रियों को वश में कर लिया है वही गोस्वामी माना जाता है। कृष्ण भगवान् कहते हैं कि जो अपनी पहचान भ्रामक भौतिक शरीर से रखता है वह अपने स्वरूप आत्मा में स्थिर नहीं हो सकता है। शारीरिक आनन्द चञ्चल और प्रमादी है और हम वास्तव में आनन्द नहीं ले सकते हैं क्योंकि इसका स्वभाव क्षणिक है। वास्तविक आनन्द आत्मा का है शरीर का नहीं है। हमें अपने जीवन को इस प्रकार मोड़ना है कि जिससे हम शारीरिक आनन्द की ओर न जायें। यदि किसी प्रकार हम हट गये तो हमारे लिए, जो शरीर से परे हमारे वास्तविक स्वरूप में अपनी भावना को स्थिर करना सम्भव नहीं है।

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ॥
त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ॥

(भ. गी. २:४४,४५)

"जो इन्द्रियों के आनन्द और सांसारिक ऐश्वर्य से मोह रखते हैं और जो इन चीजों के मोह में फँसे हुए हैं, वे भगवान् की भक्ति में दृढ़ता के साथ नहीं लग सकते हैं। वेद तीन गुणों के विषय का वर्णन करते हैं। हे अर्जुन! इन गुणों के ऊपर चढ़ो। द्वन्द्व से मुक्त होकर, लाभ और रक्षा की परेशानी से मुक्त होकर आत्मा में स्थिर हो।"

'वेद' शब्द के माने ज्ञान की पुस्तकों से है। ज्ञान की

अनेक पुस्तकें हैं जो कि देश, जनता और वातावरण के अनुसार बदलती रहती हैं। भारत में ज्ञान की पुस्तकों से तात्पर्य वेदों से होता है। पाश्चात्य देशों में 'ओल्ड टेस्टामेंट' या 'न्यू टेस्टामेंट' कहलाते हैं। मुसलमान लोग कुरान को स्वीकार करते हैं। इन सब ज्ञान की पुस्तकों का क्या उद्देश्य है? ये सभी हमें अपनी वास्तविक पहचान आत्मा की शिक्षा देने के लिए हैं। इनका उद्देश्य कुछ नियमों और विधियों से शारीरिक क्रियाओं को नियमित करना है और ये विधि और नियम नीति शास्त्र के सिद्धान्त कहलाते हैं। उदाहरण के लिए अपने जीवन को नियमित करने के लिए बाइबिल में दस आज्ञायें हैं। ऊँची सिद्धि पाने के लिए शरीर को संयम में रखना अनिवार्य है। बिना नियमित सिद्धान्तों के जीवन में पूर्णता पाना सम्भव नहीं है। नियमित सिद्धान्त भिन्न-भिन्न राष्ट्रों और शास्त्रों में भिन्न-भिन्न हो सकते हैं; इससे कोई फर्क नहीं है क्योंकि वे देश, काल और मनुष्यों की रुचियों के अनुसार ही बनाये गये हैं। परन्तु नियमों का सिद्धान्त एक ही है। इसी प्रकार सरकार भी अनेकों नियम नागरिकों के लिए बनाती है। बिना नियमों के सरकार या समाज की प्रगति की कोई सम्भावना नहीं है। उपरोक्त श्लोक में कृष्ण भगवान् अर्जुन से कहते हैं कि वेद के ये नियम तीनों गुण सत्त्व, रज और तम से ऊपर चढ़ने के लिए हैं। लेकिन कृष्ण भगवान् अर्जुन को अपना मत देते हैं कि अपने को अपने स्वरूप आत्मा में, प्रकृति के द्वन्द्व से परे रखो।

हमने यह पहले भी समझाया है कि यह द्वन्द्व इन्द्रियों के विषयों के साथ जो सम्बन्ध होते हैं उनसे उत्पन्न होते हैं। जैसे जाड़ा और गर्मी, सुख और दुःख—दूसरे शब्दों में यह अपने को शरीर समझने से उत्पन्न होता है। कृष्ण भगवान् कहते हैं कि जो भौतिक आनन्द और शक्ति चाहते हैं वे वेद के शब्दों के धोखे में आ जाते हैं जो किसी को दुःख और यज्ञों और नियमित कर्मों से स्वर्गलोक के आनन्द का प्रलोभन बतलाते हैं। आनन्द लेना हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है; यह आत्मा का गुण है परन्तु जब आत्मा सांसारिक चीजों में आनन्द लेना चाहती है तो यह गलत है।

हर कोई भौतिक विषयों में आनन्द लेने जाता है और जितना सम्भव हो सकता है उतना भौतिक ज्ञान एकत्रित करता है। कोई रसायन शास्त्री, भौतिक शास्त्री, राजनैतिक या कलाकर इत्यादि बनता है। हर कोई किसी न किसी चीज के विषय में कुछ न कुछ जानता है और साधारणतया इसी को ज्ञान कहते हैं। परन्तु जैसे ही हम यह शरीर छोड़ते हैं हमारा सभी ज्ञान समाप्त हो जाता है। पिछले जन्म में कोई व्यक्ति महान् ज्ञानी हो सकता है परन्तु इस जीवन में उसे फिर से विद्यालय जाना होता है और प्रारम्भ से पढ़ना लिखना सीखना होता है। पिछले जन्म में हमने जो भी ज्ञान प्राप्त किया था उसे हम इस जन्म में भूल जाते हैं। वास्तविकता यह है कि हम परम ज्ञान खोज रहे हैं परन्तु वह इस भौतिक शरीर से नहीं पाया जा सकता है।

हम सब इन शरीरों से आनन्द खोज रहे हैं परन्तु शारीरिक आनन्द वास्तविक आनन्द नहीं है। यह आडम्बरी है। हमें समझना चाहिए कि यदि हम इस आडम्बरी आनन्द में लगे रहे तो हम अपने सनातन आनन्द के स्तर को पाने योग्य नही हो सकेंगे।

शरीर को बीमारी की स्थिति समझना चाहिए। बीमार व्यक्ति ठीक से आनन्द नहीं ले सकता है। उदाहरण के लिए पीलिया बीमारी वाले व्यक्ति को चीनी कड़वी लगेगी, परन्तु स्वस्थ व्यक्ति उसके मीठे पन का स्वाद ले सकता है। दोनों संजोगों में चीनी एक है लेकिन हमें अपनी स्थिति के अनुसार इसके विभिन्न स्वाद लगते हैं। जब तक कि हम इस भौतिक शारीरिक जीवन की बीमारी से ठीक नहीं होंगे, हम आलौकिक जीवन के मीठे पन का स्वाद नहीं ले सकते हैं। वास्तव में वह हमें स्वाद में कड़वा लगेगा और फिर इस सांसारिक जीवन के आनन्द को बढ़ाने से हमारी बीमारी और भी बढ़ती जायगी, टाइफाइड का रोगी ठोस भोजन नहीं कर सकता है और यदि कोई उसे आनन्द लेने के लिए दे और वह खाये तो बीमारी बढ़ेगी और जीवन भयंकर स्थिति में पड़ जायेगा। यदि हम वास्तव में सांसारिक जीवन के दु:खों से मुक्ति पाना चाहते हैं तो हमें शरीर की आवश्यकतायें और आनन्द कम करने होंगे।

वास्तव में सांसारिक आनन्द आनन्द नहीं है। वास्तविक आनन्द कभी समाप्त नहीं होता है। महाभारत में एक श्लोक है–'रमन्ते योगिनोऽनन्ते'–योगी जो आत्मज्ञान के मार्ग में प्रगति

करने की चेष्टा कर रहे हैं वे वास्तव में आनन्द ले रहे हैं और वह आनन्द अनन्त है—कभी न अन्त होने वाला। यह इसलिए है कि उनका आनन्द परम आनन्द लेने वाले राम या कृष्ण के सम्बन्ध से है। कृष्ण भगवान सत्य में आनन्द लेने वाले हैं और भगवद् गीता इस प्रकार कहती है :

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥
(भ. गी. ५:२९)

"साधु लोग मुझे हर यज्ञ और तपस्या का अन्तिम उद्देश्य समझ कर, सभी लोकों और देवताओं का ईश्वर समझ कर, हर जीव की भलाई चाहने वाला और लाभ देने वाला जानकर इन सांसारिक दुःखोंके जालसे शांति पाते हैं।"

'भोग' के माने आनन्द से है और हमारा आनन्द अपनी स्थिति आनन्द देने वाला जानकर है। वास्तविक आनन्द लेने वाले भगवान हैं और वे हमसे आनन्द लेते हैं। इस संसार में उदाहरण पति और पत्नी के मध्य सम्बन्ध में पाया जा सकता है। पति आनन्द लेने वाला है यानी पुरुष है और पत्नी आनन्द देने वाली है यानी प्रकृति है। प्री धातु का मतलब है स्त्री-पुरुष। आत्मा भोक्ता है, और प्रकृति या कुदरत् भोग का विषय है। फिर भी आनन्द पति और पत्नी दोनों ही लेते हैं। जब वास्तव में आनन्द होता है तो यह भिन्नता नहीं रहती कि पति अधिक आनन्द ले रहा है और पत्नी कम आनन्द ले रही है। परन्तु जब आनन्द आता

है तो कोई विभाजन नहीं रहता है। गौर से देखने से कोई जीव आनन्द लेने वाला नहीं है।

भगवान विस्तृत हुए और हम उनके विस्तार हैं। भगवान् एक हैं, दो नहीं हैं परन्तु वे आनन्द लेने के लिए अनेक रूपों में विस्तृत होते हैं। हमें अनुभव है कि कमरे में अकेले बैठे, बिना किसी से बातें किये कुछ भी आनन्द नहीं मिलता। किसी प्रकार यदि पाँच व्यक्ति कमरे में उपस्थित हों तो हमारा आनन्द बढ़ जाता है और यदि हम अनेक व्यक्तियों के समक्ष कृष्ण भगवान् की चर्चा करें तो हमारे आनन्द की सीमा ही नहीं रहती है। आनन्द के माने विविधता से है। भगवान् अपने आनन्द के लिए अनेक बने हैं और हमारी स्थिति उन्हें आनन्द देने वाली है। यही हमारा स्वरूप है और यही इस सृष्टि का उद्देश्य है। आनन्द लेने वाला और आनन्द देने वाले दोनों ही चेतनामय हैं, परन्तु आनन्द देने वाले की चेतना आनन्द लेने वाले की चेतना से गौण है। यद्यपि कृष्ण भगवान् आनन्द लेने वाले हैं और हम आनन्द देने वाले हैं, परन्तु आनन्द का अनुभव दोनों में बराबर ही है। हमारे आनन्द की पूर्णता भगवान् के आनन्द में सहयोग देने में है। शारीरिक स्तर पर अलग आनन्द लेने की कोई सम्भावना नहीं है। सम्पूर्ण भगवद् गीता में शारीरिक स्तर पर सांसारिक आनन्द निरुत्साहित किया गया है।

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदा।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ।।भ.गी. २:१४।।

"ओ कुन्ती के पुत्र ! परिवर्तित होने वाली गर्मी और ठण्डक, सुख और दुःख का आगमन और उनका कुछ समय के वाद चला जाना शीत और ग्रीष्म ऋतुओं के आने जाने की भाँति है। जो इन्द्रियों के स्पर्श के कारण उत्पन्न होते हैं। हे भरत के वंशज ! हर एक को बिना अशान्त हुए इसे सहना करना चाहिए।"

इस प्रकृति के तीन गुणों की क्रिया और परिक्रिया से यह भौतिक शरीर उत्पन्न हुआ है और यह विनाश होने के लिए है।

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत॥
(भ. गी. २:१८)

"अविनाशी तथा बिना कोई नाप वाले सनातन जीव के भौतिक शरीर का ही नाश होता है। इसलिए ओ भरत के वंशज, लड़ो।"

कृष्ण भगवान् हमें शारीरिक स्तर से ऊपर चढ़कर वास्तविक परम जीवन में आने की उत्तेजना देते हैं।

गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान्।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते॥
(भ. गी. १४:२०)

"जब बन्धन वाले जीव सत्त्व, रजस् और तमस् इन गुणों को पार कर लेते हैं तो वे जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था के

दुःखों से मुक्ति पाते हैं और इसी जीवन में अमृत का आनन्द ले सकते हैं।"

अपने को 'ब्रह्म भूत' या भगवद् ज्ञान के स्तर में स्थित करने के लिए, तीनों गुणों से ऊपर चढ़ने के लिए हमें कृष्ण भावना की विधि स्वीकार करनी होगी। श्रीचैतन्य महाप्रभु का उपहार यह महामन्त्र "हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे, हरे राम, हरे राम, राम राम हरे हरे" का कीर्तन इस विधि की सुविधा देता है। यह विधि भक्ति योग या मन्त्र योग कहलाती है और सर्वश्रेष्ठ योगी इस विधि का उपयोग करते हैं। किस प्रकार योगी अपनी पहचान जन्म मृत्यु के चक्र और भौतिक शरीर के बाहर अनुभव करते हैं और इस संसार से वैकुण्ठ लोक जाते हैं वह अगले अध्याय का विषय है।

—o—

२

मृत्यु के बाद प्रगति

अनेक प्रकार के योगी होते हैं जैसे हठ योगी, ज्ञान योगी, ध्यान योगी और भक्ति योगी—ये सब अलौकिक वातावरण में प्रवेश करने योग्य होते हैं। 'योग' शब्द के माने जोड़ना होता है और योग विधि अलौकिक जगत् से सम्बन्ध स्थापन के लिए है। जैसा कि पहले अध्याय में बताया गया है, प्रारम्भ से ही हम सब भगवान से ही सम्बन्धित हैं, परन्तु अब हम सांसारिक मलिनता के प्रभाव में हैं। विधि यह है कि हमें प्रभु के धाम में वापिस जाना है और इस सम्बन्ध को फिर से स्थापित करने की विधि योग कहलाती है। योग शब्द के दूसरे माने धन चिह्न से है। वर्तमान काल में हम भगवान या परम सत्य से घटे हुए हैं। परन्तु जब हम कृष्ण भगवान् को अपने जीवन में जोड़ते हैं तो हमारा मनुष्य जीवन पूर्णता पाता है।

मृत्यु के समय ही हमें पूर्णता की विधि को पूर्ण करना है। इस जीवन में हमें पूर्णता की विधि का अभ्यास करना है जिससे कि मृत्यु काल में जब हमें यह सांसारिक शरीर छोड़ना हो तो इस पूर्णता या सिद्धि का अनुभव कर सकें।

प्रयाणकाले मनसाऽचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्॥
(भ. गी. ८:१०)

"जो मृत्यु कालमें अपनी प्राणवायु को भौंहों के मध्य स्थिर करके भगवान् का भक्ति के साथ स्मरण करते हैं वे निश्चय ही भगवान् को पायेंगे।"

जिस प्रकार विद्यार्थी किसी विषय को चार या पाँच वर्ष पढ़ता है और फिर परीक्षा में बैठता है और अन्त में उपाधि पाता है; इसी प्रकार जीवन के विषय में यदि हम मृत्यु काल की परीक्षा के लिए अभ्यास करें और यदि हम परीक्षा में सफल हो जायें तो हम अलौकिक जगत् में भेजे जायेंगे। हमारे सम्पूर्ण जीवन की परीक्षा मृत्यु काल में होती है।

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥
(भ. गी. ८:६)

"शरीर छोड़ते समय जिस स्थिति का वह स्मरण करता है वह स्थिति वह बेशक पा लेता है।"

बंगाली में कहावत है कि यदि कोई सिद्धि के लिए कुछ करता है तो उसकी परीक्षा मृत्यु के समय ही होती है। भगवद् गीता में कृष्ण भगवान् बतलाते हैं कि शरीर छोड़ते समय किसको क्या करना चाहिए। ध्यान योगी के लिए कृष्ण भगवान् निम्नलिखित श्लोक बताते हैं:

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये॥
सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणां॥
(भ. गी. ८:११,१२)

"वे व्यक्ति जिन्हें वेदों का ज्ञान है, जो संन्यास धर्म में महान् ऋषि हैं, और जो ओम् शब्द का उच्चारण करते हैं, वे ब्रह्म में प्रवेश करते हैं। ऐसी सिद्धि पाने के लिए वे ब्रह्मचर्य जीवन का अभ्यास करते हैं। अब मैं तुम्हें वह विधि बताऊँगा जिससे व्यक्ति इस संसार से मुक्ति पा सकता है। योगी की स्थिति सभी इन्द्रियों के विषयों से विरक्त रहना है। इन्द्रियों के सभी प्रवेश द्वारों को वन्द करके, मन को हृदय में लगा कर; प्राण वायु को सिर के ऊपर चढ़ा कर योगी अपने आप को योग में स्थिर करता है।"

योग विधि में इस अभ्यास को प्रत्याहार कहते हैं जिसके माने हैं 'पूर्णतया विपरीत।' यद्यपि जीवन में आँखें सांसारिक सौन्दर्य देखने में व्यस्त हैं, परन्तु मृत्यु काल में हर एक इन्द्रिय को उसके विषय से हटाकर आन्तरिक सौन्दर्य देखना चाहिए। इसी प्रकार कान भी इस संसार में अनेक प्रकार की ध्वनि सुनने के अभ्यस्त हैं, परन्तु मृत्यु के समय उसे अन्दर से परम शब्द ओम् सुनना चाहिए।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥भ. गी. ८:१३॥

"योग अभ्यास में स्थिर होने के बाद परम पवित्र शब्द ओम् का उच्चारण करके यदि कोई भगवान् के विषय में सोचता है और शरीर छोड़ता है तो वह निश्चय ही वैकुण्ठ लोक पहुँचता है।

इस प्रकार सभी इन्द्रियों की बाहरी क्रियाओं को रोकना होगा और भगवान् के रूप विष्णु मूर्ति पर ध्यान लगाना होगा। मन बहुत चञ्चल है परन्तु इसको अपने हृदय में स्थित भगवान् में लगाना होगा। जब मन हृदय के अन्दर स्थिर हो जाता है और जब प्राण वायु सिर में ऊपर तक पहुँच जाता है तब कोई योग में सिद्धि पा सकता है।

इस स्तर पर योगी निश्चित करता है कि उसे कहाँ जाना है। इस सांसारिक विश्व में अनेक लोक हैं और इस विश्व के बाहर वैकुण्ठ लोक है। योगियों को वैदिक साहित्य से, इन सभी स्थानों का कुछ ज्ञान है। जिस प्रकार कोई अमरीका जाने से पहले कोई पुस्तक पढ़कर यह ज्ञान ले सकता है कि अमरीका किस प्रकार का देश है इसी प्रकार किसी को भी वैकुण्ठ लोकों का ज्ञान वैदिक साहित्य पढ़कर मिल सकता है। योगी इन सब स्थानो के विषय में जानते हैं और बिना किसी विमान की सहायता के वे जिस लोक में भी जाना चाहें, जा सकते हैं। अन्य लोकों में पहुँचने के लिए यान्त्रिक चीजों की सहायता लेने की विधि शास्त्रों में स्वीकृत नहीं है। शायद बहुत समय तक प्रयत्न करने और बहुत सारा धन व्यय करने के बाद इस विधि से कुछ व्यक्ति ऊँचे लोकों में पहुँच सकते हैं परन्तु यह बहुत ही कठिन और उपयोग में न लाने योग्य विधि है। वैसे भी इस सांसारिक विश्व के बाहर तो किसी भी यान्त्रिक विधि से जाना सम्भव नहीं है।

साधारणतया ऊँचे लोकों में जाने की स्वीकृत विधि ध्यान योग या ज्ञान योग का अभ्यास है। भक्ति योग का अभ्यास इस संसार के किसी भी लोक में प्रवेश करने के लिए उपयुक्त नहीं है। जो कृष्ण भगवान् के सेवक हैं वे इस संसार में किसी भी लोक में प्रवेश करने के इच्छुक नहीं हैं क्योंकि वे जानते हैं कि वे यदि इस विश्व के किसी भी लोक में प्रवेश करें तो जन्म, जरा, मृत्यु और रोग के चार सिद्धान्त पायेंगे। ऊँचे लोकों में जीवन की अवधि इस पृथ्वी की अवधि से कहीं बड़ी हो सकती है परन्तु मृत्यु वहाँ भी है। सांसारिक विश्व से हमारा तात्पर्य उन लोकों से है जहाँ जन्म, मृत्यु, जरा और रोग होता है और अलौकिक विश्व से हमारा तात्पर्य उन लोकों से है जहाँ जन्म, मृत्यु, जरा और रोग नहीं होता है। जो बुद्धिमान हैं वे इस संसार के किसी भी लोक में प्रगति करने की चेष्टा नहीं करते हैं।

यदि कोई ऊँचे लोकों में यान्त्रिक विधि से प्रवेश करने का प्रयत्न करता है तो उसकी तुरन्त मृत्यु निश्चित है क्योंकि यह शरीर वातावरण का इतना बड़ा परिवर्तन सहन नहीं कर सकता है। परन्तु यदि कोई योग विधि से ऊँचे लोकों मे प्रवेश करने का प्रयास करे तो उसे प्रवेश करने के लिए उपयुक्त शरीर मिल जायेगा। हम देख सकते हैं कि यह बात इस पृथ्वी पर भी प्रदर्शित होती है, हमारे लिए समुद्र में पानी के वातावरण में रहना सम्भव नहीं है और न तो जलचरों के लिए इस पृथ्वी पर रहना सम्भव है। इस प्रकार

हम समझते हैं कि इस पृथ्वी पर भी हर किसी को किसी विशेष स्थान पर रहने के लिए, किसी विशेष प्रकार का शरीर चाहिए। इसी प्रकार अन्य लोकों में रहने के लिए भी किसी विशेष प्रकार का शरीर चाहिए। ऊँचे लोकों में पृथ्वी की अपेक्षा शरीर अधिक समय तक जीवित रहता है और ऊँचे लोकों (स्वर्ग लोक) में एक दिन पृथ्वो के छः महीनों के बराबर होता है। इसलिए वेद वर्णन करते हैं कि जो लोग ऊँचे लोकों में रहते हैं वे इस पृथ्वी के दस हजार वर्षों '' भी अधिक समय तक जीवित रहते हैं, फिर भी इतनी लम्बी आयु के बाद भी मृत्यु हर एक की प्रतीक्षा करती है।' यद्यपि कोई बीस हजार या पचास हजार या लाखों वर्ष जीवित रहे, फिर भी इस संसार में वर्षों की गिनती हो जायेगी और मृत्यु होगी। मृत्यु के चंगुल से कैसे बचें? यह शिक्षा भगवद् गीता में दी गई है।

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

(भ. गी. २:२०)

"आत्मा के लिए कभी भी जन्म या मृत्यु नहीं है, एक बार होकर ऐसा नहीं हो सकता है कि वह न रहे। उसका जन्म नहीं होता है, वह सनातन है, सदैव रहने वाला है, न मरने वाला है, प्रमुख है। उसकी हत्या नहीं होती है जबकि शरीर की हत्या होती है।

हम आत्मा हैं और इसलिए सनातन हैं। तो हम अपने को जन्म और मृत्यु के विषय में क्यों फँसाते हैं ? जो यह प्रश्न पूछता है वह बुद्धिमान माना जाता है। जो लोग कृष्ण भावना में हैं वे लोग बहुत बुद्धिमान हैं, क्योंकि वे लोग उन लोकों में जाने के इच्छुक नहीं हैं जहाँ मृत्यु होती है। वे भगवान् के समान शरीर पाने के लिए, लम्बी अवधि वाला स्वर्गलोक का जीवन भी स्वीकार नहीं करेंगे। "ईश्वरः परमः कृष्णः सच् चिद् आनन्द विग्रहः।" सत् के माने सनातन, चित् के माने पूर्ण ज्ञान और आनन्द के माने पूर्ण सुख है। कृष्ण भगवान् आनन्द के सागर हैं। यदि हम अपने आपको इस संसार से कृष्ण लोक या वैकुण्ठ लोक में ले जायें तो हमें उसी प्रकार का सत् चिद् आनन्द शरीर मिलेगा। इसलिए जो कृष्ण भावनामय हैं, उनका उद्देश्य उनका मित्र है जो कि इस संसार के ऊँचे लोकों में प्रगति करने का प्रयास कर रहे हैं।

हर एक का आत्मा सूक्ष्म और सच्चिदानन्द है। योग की सिद्धि इस पर निर्भर करती है कि इस आत्मा को सिर के ऊपरी भाग में कैसे ले जायें। इस स्तर पर आने के बाद योगी अपने आप को अपनी इच्छा के अनुसार इस संसार के किसी भी लोक में ले जा सकता है। यदि योगी की जिज्ञासा यह जानने की है कि चन्द्रमा किस प्रकार का है तो वह वहाँ जा सकता है, या यदि वह ऊँचे लोकों में जाने का इच्छुक हो तो वह वहाँ भी जा सकता है जैसे यात्री न्यूयार्क, कैनड़ा या

इस पृथ्वी के अन्य नगरों में जाते हैं। इस पृथ्वी पर कहीं भी जाओ, हर जगह प्रवेश की आज्ञा और आयात-कर की समान विधि मिलेगी। इसी प्रकार सभी सांसारिक लोकों में जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था और बीमारी के सिद्धान्त देखने को मिलेंगे।

"ओम इति एकाक्षरं ब्रह्म"—मृत्यु के समय योगी 'ओम्' शब्द का उच्चारण कर सकता है। ओम् परम शब्द ध्वनि का संक्षिप्त रूप है। यदि योगी इस ध्वनि का उच्चारण करता है और कृष्ण या विष्णु भगवान् का स्मरण (मामनुस्मरन्) करता है तो वह सबसे ऊँची गति पाता है। योग की विधि विष्णु का ध्यान करना है। निर्विशेषवादी भगवान् के किसी रूप की कल्पना करते हैं परन्तु वैष्णव कल्पना नहीं करते हैं बल्कि वास्तव में देखते हैं। यदि कोई कल्पना करे या वास्तव में देखे, हर एक को कृष्ण भगवान् के रूप पर ध्यान लगाना होगा।

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥

(भ. गी. ८:१४)

"हे पृथा के पुत्र! जो सदैव मेरा ध्यान करता है वह मुझे बहुत सरलता से पा लेता है। क्योंकि वह सदैव भक्ति योग में व्यस्त है।"

जो चपल जीवन, चपल सुख और चपल सुविधाओं से सन्तुष्ट है उसे बुद्धिमान नहीं माना जा सकता है, कम से

कम भगवद् गीता के अनुसार तो नहीं। भगवद् गीता के अनुसार जिनकी बुद्धि बहुत छोटी है वे अस्थाई चीजें चाहते हैं। हम सनातन हैं, इन अस्थाई चीजों के इच्छुक क्यों हैं ? कोई भी अस्थाई स्थिति नहीं चाहता है। यदि हम किराये के मकान में रहते हैं और मकान मालिक मकान खाली करने को कहे तो हमें दुःख होगा, परन्तु जब हम अच्छे मकान में जाते हैं तो हमें शोक नहीं होता है। यह हमारा स्वभाव है, क्योंकि हम सनातन हैं, इसलिए हम सनातन निवास-स्थान चाहते हैं। हम मरना नहीं चाहते हैं क्योंकि वास्तव में हम सनातन हैं। हम वृद्ध होना और बीमार होना भी नहीं चाहते हैं क्योंकि ये बाहरी और अस्थाई स्थितियाँ हैं। यद्यपि हम ज्वर से दुःखी होने के लिए नहीं बने हैं फिर भी कभी-कभी ज्वर आता है और हमें ठीक होने के लिए चिकित्सा करवानी पड़ती है और सावधानियाँ अपनानी पड़ती हैं। चार प्रकार के दुःख जैसे ज्वर आदि ये सब इस भौतिक शरीर के कारण हैं। यदि किसी प्रकार हम इस शरीर से निकल जाएँ तो सभी दुःखों से छुटकारा पा लेंगे, जो इस शरीर के साथ हैं।

निर्विशेषवादियों को इस शरीर से मुक्ति पाने के लिए यहाँ कृष्ण भगवान् 'ओम शब्द का उच्चारण करने की सलाह दे रहे हैं। इस प्रकार उनका अलौकिक विश्व में जाना निश्चित हो जाता है। फिर भी, यद्यपि वे अलौकिक विश्व में प्रवेश करते हैं, वे वहाँ किसी वैकुण्ठ लोक में प्रवेश नहीं कर सकते

हैं। वे बाहर ब्रह्मज्योति में रहते हैं। ब्रह्म ज्योति की तुलना सूर्य के प्रकाश से की जा सकती है और वैकुण्ठ लोक की तुलना सूर्य लोक से की जा सकती है। वैकुण्ठ में निर्विशेषवादी लोग भगवान् की ज्योति, ब्रह्म-ज्योति में रहते हैं। निर्विशेषवादी ब्रह्म ज्योति में सच्चिदानन्द-ज्योति की भाँति रहते हैं और इस प्रकार ब्रह्म ज्योति इन ब्रह्म चिंगारियों से भरी होती है। ब्रह्म स्तर में मिल जाने का यही अर्थ है। किसी को यह नहीं समझना चाहिए कि ब्रह्म ज्योति में मिलने के माने ब्रह्म ज्योति से एक हो जाने से है; हर चिंगारी का अपना व्यक्तित्व रहता है परन्तु निर्विशेषवादी व्यक्त रूप नहीं चाहते हैं इसलिए वे ब्रह्म ज्योति में चिंगारियों के रूप में पाये जाते हैं। जैसे सूर्य का प्रकाश अनेकों अणु जैसे सूक्ष्म अंशों का बना है वैसे ही ब्रह्म ज्योति भी अनेकों आत्मा रूप चिंगारियों की बनी है।

कुछ भी हो, जीव होने के कारण हम आनन्द लेना चाहते हैं। सिर्फ अस्तित्त्व ही पर्याप्त नहीं है। हम आनन्द चाहते हैं और साथ ही साथ अस्तित्त्व भी। अपनी पूर्णता में जीव तीन गुणों के बने हैं—सत्य, ज्ञान और आनन्द। जो जीव ब्रह्म ज्योति में रहते हैं वे कुछ समय तक पूरे ज्ञान के साथ ब्रह्म से मिल गये हैं, रह सकते हैं, परन्तु उन्हें वहाँ आनन्द नहीं मिलता है क्योंकि वह चीज वहाँ नहीं है। कोई एक कमरे में कुछ समय तक ही रह सकता है और कोई पुस्तक पढ़ कर या किसी विचार में विलीन रह कर आनन्द

ले सकता है परन्तु यह सम्भव नहीं है कि वह उस कमरे में वर्षों तक रहे, निश्चय ही वह सदैव नहीं रह सकता है। इसलिए जो अव्यक्त रूप से परम सत्य में मिल जाते हैं उनके लिए इस संसार में कुछ सङ्गत पाने के लिए फिर से गिरने का बहुत अवकाश है। यह श्रीमद्भागवतम् का मत है। अवकाश में यात्रा करने वाले यात्री हजारों मील जा सकते हैं परन्तु यदि उन्हें अन्य लोकों में विश्राम करने की जगह नहीं मिलेगी तो वे इस पृथ्वी पर वापिस आयेंगे। किसी भी तरह विश्राम की आवश्यकता है। अव्यक्त रूप में विश्राम अनिश्चित है। इसलिए श्रीमद्भागवतम् कहता है कि इतनी चेष्टा करने के बाद भी यदि निर्विशेषवादी आध्यात्मिक विश्व में प्रवेश करें और अव्यक्त एकता पायें तब भी वे इस संसार में फिर से वापिस आते हैं क्योंकि उन्होंने भगवान् की भक्ति और प्रेम को ठुकराया है। इसलिए जब तक हम इस पृथ्वी पर हैं हमें कृष्ण भगवान् की सेवा और प्रेम का अभ्यास करना सीखना चाहिए। यदि हम इसे सीख लेंगे तो वैकुण्ठ लोक में प्रवेश कर सकते हैं। निर्वि-शेषवादियों की परव्योम में अस्थाई परिस्थिति होती है। अकेले-पन के कारण वे कुछ संग पाने का प्रयास करेंगे। क्योंकि वे व्यक्तिगत रूप से भगवान् की सङ्गत नहीं करते हैं इसलिए उन्हें इस दुनियाँ में फिर से आकर बँधे हुए जीवों के संग में रहना होगा।

इसलिए यह बहुत ही महत्वपूर्ण बात है कि हम अपने स्वरूप को समझें हम सत्यता, पूर्ण ज्ञान और आनन्द भी चाहते हैं। जब हम अधिक समय के लिए अकेले छोड़ दिये जाते हैं

तो हमें आनन्द नहीं मिलता है और तब हम इस संसार के आनन्द को स्वीकार करते हैं। कृष्ण भावना में वास्तविक आनन्द मिलता है। इस संसार में साधारणतया मैथुन करना ही सबसे ऊँचा आनन्द माना जाता है। यह आनन्द वैकुण्ठ में कृष्ण भगवान की सन्निधि के आनन्द की विकृत छाया है। परन्तु हमें नहीं सोचना चाहिए कि वह आनन्द इस संसार के मैथुन के आनन्द जैसा है। नहीं, वह भिन्न है। परन्तु जब तक वैकुण्ठ में युगल जीवन नहीं है तब तक उसकी परछाई यहाँ नहीं हो सकती है। यहाँ यह केवल विकृत परछाई है परन्तु वास्तविक जीवन वहाँ कृष्ण भगवान में है जो कि सभी आनन्दों से पूर्ण है। इसलिए सबसे उत्तम विधि कृष्ण भक्ति का अभ्यास करना है जिससे मृत्यु के बाद, हम वैकुण्ठ में कृष्ण लोक और कृष्ण भगवान की सङ्गत में पहुँच जायें। 'ब्रह्म संहिता' में कृष्ण भगवान और उनके लोक का वर्णन इस प्रकार है :

चिन्तामणिप्रकरसद्मसु कल्पवृक्ष-
लक्षावृतेषु सुरभीरभिपालयन्तम्।
लक्ष्मीसहस्रशतसम्भ्रमसेव्यमानं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥
(ब्रह्म संहिता ५:२९)

"मैं गोविन्द का भजन करता हूँ जो कि आदि पुरुष हैं, सबके जन्मदाता हैं जो सब इच्छायें पूरी करने वाली सुरभी गायें चरा रहे हैं, जिनका निवास स्थान चिन्तामणि रत्नों का बना है, जहाँ करोड़ों इच्छा पूरी करने वाले (कल्प) वृक्ष हैं,

जहाँ सैकड़ों और हजारों गोपियाँ या लक्ष्मीयाँ उनकी आदर और प्रेम के साथ सेवा कर रही हैं।"

यह कृष्ण लोक का वर्णन है। घर चिन्तामणि-रत्न के बने हुए हैं। जिसे भी चिन्तामणि पत्थर छूता है वह तुरन्त सोना बन जाता है। इच्छा की पूर्ति करने वाले वृक्ष (कल्प वृक्ष) हैं। उनसे हर कोई जो कुछ भी चाहता है ले सकता है। इस संसार में हमें आम के वृक्ष से आम मिलता है और सेव के वृक्ष से सेव मिलता है परन्तु वहाँ कोई किसी भी वृक्ष से कोई भी चीज ले सकता है। इसी प्रकार वहाँ सुरभी गायें हैं जो असीमित दूध दे सकती हैं। वैदिक साहित्य में वैकुण्ठ लोक का यह वर्णन है।

इस संसार में हम जन्म, मृत्यु और अनेकों प्रकार के दुःखों से बँध गये हैं। इन भौतिक वैज्ञानिकों ने इन्द्रियों के आनन्द के लिए और विनाश करने के लिए अनेकों सुविधा-जनक चीजों का आविष्कार कर लिया है परन्तु उन्होंने वृद्धा-वस्था, बीमारी और मृत्यु जैसी समस्याओं का कोई भी हल नहीं किया है। वे किसी ऐसे यन्त्र का आविष्कार नहीं कर सकते हैं जो कि वृद्धावस्था मृत्यु और बीमारी को रोके। हम ऐसी चीज उत्पन्न कर सकते हैं जो कि मृत्यु को बढ़ाये परन्तु ऐसी चीज को नहीं जो कि मृत्यु को रोके। जो बुद्धिमान हैं वे फिर भी इस सांसारिक जीवन के चार प्रकार के दुःखों से मतलब नहीं रखते हैं बल्कि वैकुण्ठ लोक में प्रगति से रखते हैं। जो सदैव समाधि (नित्य युक्तस्य योगिनः) में

रहता है वह अपना ध्यान किसी अन्य चीज में नहीं देता है। वह सदैव समाधि में स्थिर रहता है। उसका मस्तिष्क सदैव कृष्ण भगवान के विचार में बिना किसी विक्षेप के (अनन्य चेताः सततम्) लगा रहता है। सततम् से तात्पर्य किसी भी जगह किसी भी समय से है।

भारत में मैं वृन्दावन में रहता था और अब मैं अमरीका में रहता हूँ परन्तु इससे यह तात्पर्य नहीं है कि मैं वृन्दावन के बाहर हूँ; क्योंकि यदि मैं सदैव कृष्ण भगवान के विषय में सोचूं तो मैं किसी भी सांसारिक उपाधि के होने पर भी मैं वृन्दावन में हूँ। कृष्ण भावना का अर्थ है कि कोई सदैव कृष्ण भगवान के साथ वैकुण्ठ में, गोलोक वृन्दावन में रहें और सदैव इस भौतिक शरीर छोड़ने की प्रतीक्षा करता रहे। 'स्मरति नित्यशः' के माने हैं लगातार याद करना और जो लगातार कृष्ण भगवान का स्मरण करता है वह सरलता से कृष्ण भगवान को खरीद लेता है—"तस्याहम् सुलभ।" कृष्ण भगवान स्वयं कहते हैं कि वे इस भक्ति योग के द्वारा सरलता से खरीदे जा सकते हैं। तो हम अन्य विधियों को क्यों स्वीकार करें? हम दिन में चौबीस घण्टे "हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे, हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे" का कीर्तन कर सकते हैं। इसके लिए कोई नियम या विधि नहीं है। कोई सड़क पर, रेलगाड़ी में, घर में या कार्यालय में कीर्तन कर सकता है। इसमें कोई कर या कोई व्यय नहीं है। तो क्यों न स्वीकार करें?

३

भौतिक संसार से मुक्ति

ज्ञानी और योगी साधारणतया निर्विशेषवादी होते हैं और यद्यपि उन्हें मुक्ति का अस्थाई रूप अव्यक्त ब्रह्म ज्योति में प्रवेश मिल जाता है; परन्तु श्रीमद्भागवतम् के अनुसार उनका ज्ञान शुद्ध नहीं माना गया है। वे परम सत्य के स्तर में ब्रह्मचर्य कठोर तपस्यायें और ध्यान करके पहुँच जाते हैं परन्तु जैसा कि पहले बताया गया है कि वे इस संसार में फिर से गिर जाते हैं क्योंकि उन्होंने कृष्ण भगवान के साकार रूप को गम्भीरता से नहीं लिया है। जब तक कोई कृष्ण भगवान् के चरणारविन्द की पूजा नहीं करता है तब तक उसे सांसारिक स्तर में उतरना पड़ेगा। इसलिए सबसे आदर्श तरीका यह है, "मैं आपका सेवक हूँ कृपा करके अपनी सेवा में लगाइये।" कृष्ण भगवान् अजित हैं यानी वे जीते नहीं जा सकते हैं। कोई भगवान को नहीं जीत सकता है परन्तु श्रीमद्भागवतम् के अनुसार जिसने ऐसा स्वभाव बना लिया है वह भगवान पर सरलता से विजय पा सकता है। श्रीमद्भागवतम् भी यह सलाह देता है कि हमें भगवान् को नापने की व्यर्थ की विधि को छोड़ देना चाहिए। हम इस आकाश की सीमाओं तक को नहीं नाप सकते हैं तो परमेश्वर का क्या कहना। कृष्ण भगवान की लम्बाई और चौड़ाई को

नाप लेना इस मन से सम्भव नहीं है और जो इस सारांश पर पहुँच गया है वह वैदिक साहित्य के अनुसार बुद्धिमान है। हर एक को बहुत ही नम्रता के साथ यह समझना चाहिए कि वह इस विश्व का बहुत ही अमहत्वपूर्ण अंश है। हमें परमेश्वर को अपने सीमित ज्ञान या मानसिक कल्पनाओं से समझने की चेष्टाओं को छोड़ कर, नम्र बनना चाहिए और भगवद् गीता जैसे शास्त्रों से तथा आत्मदर्शी पुरुषों के होठों से सुनना चाहिए।

भगवद् गीता में अर्जुन भगवान् के विषय में कृष्ण भगवान् के होठों से ही सुन रहा है। इस प्रकार अर्जुन ने परमेश्वर को समझने की विधि 'नम्रता से सुनने' का उदाहरण उपस्थित किया है। हमारे लिए यही योग्य है कि हम भगवद् गीता को अर्जुन से या उनके उपयुक्त प्रतिनिधि, गुरु के होठों से सुनें। सुनने के बाद इस पाये हुए ज्ञान का अभ्यास अपने दैनिक जीवन में करना अनिवार्य है। भक्त प्रार्थना करता है, "मेरे प्रिय भगवान्! आप अजित हैं, परन्तु इस विधि से, सुनने की विधि से आप जीत लिए गये हैं।" भगवान् अजित हैं परन्तु वे उन भक्तों द्वारा जीत लिए जाते हैं जिन्होंने मानसिक तर्क वितर्क करने छोड़ दिये हैं, और योग्य व्यक्ति से सुन रहे हैं।

'ब्रह्म-संहिता' के अनुसार ज्ञान पाने के दो मार्ग हैं–आरोह मार्ग या चढ़ती हुई विधि और अवरोह मार्ग यानी उतरती हुई विधि। चढ़ती हुई विधि में कोई अपने द्वारा प्राप्त किये गये ज्ञान से ही प्रगति करता है। इसमें कोई इस प्रकार सोचता है "मैं

किसी शास्त्र या महात्माओं की चिन्ता नहीं करूँगा, मैं ज्ञान की प्राप्ति ध्यान से या विचारों से पा लूँगा, इत्यादि।" इस प्रकार मैं भगवान् को समझ जाऊँगा।" दूसरी विधि में ज्ञान पहुँचे हुए ऋषियों या मुनियों से स्वीकार करना है। ब्रह्म-संहिता कहती है कि यदि कोई चढ़ती हुई विधि में, हवा या मन की गति से करोड़ों वर्ष चले तब भी वह ज्ञान नहीं पा सकेगा। उसके लिए यह विषय सदैव समझने में कठिन और अचिन्त्य रहेगा। परन्तु यह विषय भगवद् गीता में दिया गया है-अनन्य चेताः—कृष्ण भगवान् कहते हैं कि नम्रता के साथ भक्ति के मार्ग में बिना हटे उनका स्मरण करो। जो इस प्रकार उनका भजन करता है-तस्याहम् सुलभः-"मैं बहुत सरलता से पाया जा सकता हूं।" यह विधि है। यदि कोई दिन में चौबीस घण्टे कृष्ण भगवान् के लिए कार्य करता है तो कृष्ण भगवान् उसे नहीं भूल सकते हैं। नम्र होकर ही वह भगवान् का ध्यान आकर्षित कर सकता है। जैसा हमारे गुरु महाराज भक्ति-सिद्धान्त सरस्वती कहा करते थे, "भगवान् को देखने का प्रयत्न मत करो। क्या वे नौकरों की तरह हमारे सामने आकर खड़े हो जायें क्योंकि हम उन्हें देखना चाहते हैं? यह नम्रता की विधि नहीं है। हमें उन्हें प्रेम और सेवा से आने के लिए आभारित करना होगा।"

कृष्ण भगवान् को पाने की सही विधि मानवता को चैतन्य महाप्रभु ने दी थी और उनके प्रथम शिष्य रूप गोस्वामी ने इसको सबसे अच्छा समझ लिया था। रूप गोस्वामी मुसलमान राज्य में मन्त्री थे और चैतन्य महाप्रभु के शिष्य बनने के लिए

राज्य मन्त्री की पदवी छोड़ दी थी। जब वे सर्वप्रथम महाप्रभु को देखने गये थे तब वे निम्नलिखित श्लोक का उदाहरण करते हुए उनके समीप पहुँचे थे :

नमो महा वदान्याय कृष्णप्रेमप्रदायते।
कृष्णाय कृष्णचैतन्यनाम्ने गोरत्विषे नमः॥

"चैतन्य महाप्रभु जो कि अन्य सभी अवतारों से सबसे अधिक दयालु हैं यहाँ तक कि कृष्ण भगवान् से भी क्योंकि वे विना किसी भेद के कृष्ण के शुद्ध प्रेम का वितरण कर रहे हैं जिसका पहले किसी और ने नहीं किया है। मैं उनके चरणों में शरण लेता हूं।"

रूप गोस्वामी ने चैतन्य महाप्रभु को बहुत दयावान पुरुष कहा था क्योंकि वे सबसे मूल्यवान चीज—कृष्ण प्रेम को बहुत सरलता से बाँट रहे हैं। हम सब कृष्ण भगवान् को चाहते हैं और उनकी खोज में लगे हैं। कृष्ण भगवान् सबसे ज्यादा आकर्षक हैं, सबसे अधिक सुन्दर हैं, सबसे ज्यादा ऐश्वर्य वाले हैं, सबसे ज्यादा शक्तिशाली हैं और सबसे अधिक ज्ञानी हैं। इन्हीं चीजों को पाने का हम प्रयत्न कर रहे हैं। हम सुन्दर शक्तिशाली ज्ञानी और धनवान को ढूंढ़ रहे हैं। कृष्ण भगवान् इन चीजों के सरोवर हैं इसलिए हमें केवल अपने ध्यान को उनकी ओर ले जाने की आवश्यकता है और हमें हर चीज मिल जायेगी। हर-चीज-जिसकी भी हमें इच्छा है। कृष्ण भावना की विधि से हमारे हृदय की सभी इच्छाओं की पूर्ति हो जायेगी।

जिसकी कृष्ण-भावना में मृत्यु होती है, जैसा कि पहले कहा गया है उसके लिए कृष्ण लोक में, जहाँ कृष्ण भगवान् निवास करते हैं, जाना निश्चित है। इस बात पर कोई प्रश्न पूछ सकता है कि वहाँ जाने से क्या लाभ है? इसका उत्तर कृष्ण भगवान् ने स्वयं ही दिया है :

"मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ।।भ.गी.८:१५

"मुझे पाने के बाद, महान् आत्मायें, जो भक्ति योगी हैं, वे इस दुःखों से भरे तथा अनित्य संसार में फिर वापिस नहीं आते हैं। क्योंकि उन्हें सबसे उत्तम सिद्धि प्राप्त हो गई है।"

इस संसार की सृष्टि करने वाले, कृष्ण भगवान् ने इसे दुःखों से पूर्ण स्थान बताया है–दुःखालयं। तो हम इसे आराम दायक कैसे बना सकते हैं? क्या इस आडम्बरी विज्ञान की प्रगति से इस संसार को आरामदायक बनाना सम्भव है? नहीं यह सम्भव नहीं है। यहाँ तक कि इसके परिणाम में हम यह भी नहीं जानना चाहते हैं कि असली दुःख क्या है। जैसा कि पहले वताया गया है कि दुःख जन्म, मृत्यु वृद्धावस्था और बीमारी हैं और हम इसे हल नहीं कर पाते हैं, हम इसे टालने का प्रयत्न करते हैं। विज्ञान के पास इन दुःखों की समस्याओं का, जो हमें सदैव कष्ट देते हैं, कोई हल नहीं है। इसके विपरीत वे हमारे ध्यान को हवाई जहाज और अणु वम्ब बनाने की ओर ले जाते हैं। इन समस्याओं का हल भगवद् गीता में दिया गया है : यदि कोई कृष्ण भगवान् का

धाम पा ले तो उसे इस जन्म और मृत्यु वाली धरती में फिर वापिस नहीं आना होता है। हमें यह समझने का प्रयत्न करना चाहिए कि यह जगह दुःखों से पूर्ण है। इसको समझने के लिए कुछ उच्च बुद्धिमता चाहिए। कुत्ते, बिल्ली और सूअर नहीं समझ सकते हैं कि वे दुःख पा रहे हैं। मनुष्यों को विचारशील जानवर कहते हैं परन्तु उसकी विचारशीलता का उपयोग दुःखों से मुक्ति पाने की जगह, जानवरों के गुणों को बढ़ाने में लगाया जाता है। यहाँ कृष्ण भगवान साफ-साफ कहते हैं कि जो उनके पास पहुँच जाता है वह दुःख पाने के लिए फिर जन्म नहीं लेता है। वे महान् आत्माएँ जो उनके पास गये हैं, उन्हें जीवन की सबसे बड़ी सिद्धि मिल गई है–जो हर जीवों को दुःखों से छुटकारा दिलाती है।

कृष्ण भगवान् और सामान्य व्यक्ति में एक भिन्नता यह है कि सामान्य व्यक्ति एक समय में एक स्थान पर ही हो सकता है परन्तु कृष्ण भगवान् सारे विश्व में हर जगह एक ही समय पर उपस्थित हो सकते हैं और साथ-साथ अपने लोक में भी। अलौकिक जगत् में कृष्ण भगवान् का लोक, गो-लोक वृन्दावन कहलाता है। भारत में वृन्दावन वही अलौकिक गो-लोक वृन्दावन पृथ्वी पर उतर कर आया है। जब कृष्ण भगवान् अपनी अन्तरङ्ग शक्ति से उतर कर आते हैं तो उनका निवास स्थान भी पृथ्वी पर उतर कर आता है। दूसरे शब्दों में कृष्ण भगवान् जब इस पृथ्वी पर उतरते हैं तो वे किसी विशेष जगह में ही आते हैं। और उसी समय

कृष्ण भगवान् अपने निवास स्थान वैकुण्ठ के अलौकिक वातावरण में भी रहते हैं। इस श्लोक में कृष्ण भगवान् घोषणा करते हैं कि जो उनके निवास स्थान वैकुण्ठ में आता है उसे इस संसार में फिर जन्म नहीं लेना होता है। ऐसे व्यक्ति को महात्मा कहते हैं। पाश्चात्य देश में महात्मा शब्द साधारणतया महात्मा गाँधी से सम्बन्धित माना जाता है। परन्तु हमें समझना चाहिए कि महात्मा राजकीय नेताओं की उपाधि नहीं है। वल्कि महात्मा से तात्पर्य प्रथम श्रेणी के कृष्ण भावनामय व्यक्ति से है जो कि कृष्ण लोक जाने के योग्य है। महात्मा की पूर्णता यह है कि मनुष्य योनि के जीवन और प्रकृति की देन का उपयोग जन्म और मृत्यु के चक्र से मुक्ति पाने के लिए करना।

बुद्धिमान व्यक्ति जानता है कि वह दुःख नहीं चाहता है परन्तु ये दुःख उस पर बल पूर्वक डाले जाते हैं। जैसा कि पहले बताया गया है कि हम सदैव मन, शरीर, प्राकृतिक क्रियायें और अन्य जीवों द्वारा दुःखमय स्थिति में रहते हैं। यहाँ सदैव किसी न किसी प्रकार का दुःख हमारे ऊपर आता है। यह संसार दुःख के लिए ही बना है: जब तक दुःख नहीं होता है तब तक हम कृष्ण भावना में नहीं आ सकते हैं। दुःख तो वह शक्ति है, जो हमें कृष्ण भावना में प्रगति करने में सहायता देती है। अगर कोई बुद्धिमान व्यक्ति हो तो वह प्रश्न करता है कि ये दुःख उसके ऊपर बलपूर्वक क्यों डाले जाते हैं? लेकिन आधुनिक संस्कृति का स्वभाव है, "मुझे

दुःख पाने दो। दुःख को मादक वस्तुओं का सेवन करके आवरित कर दें। वस यही।" परन्तु जैसे ही मादकता का प्रभाव समाप्त होता है दुःख वापिस आ जाते हैं। जीवन के दुःखों की समस्या का हल आडम्बरी मादकता से नहीं होता। समाधान तो कृष्ण भावना से होता है।

कोई यह कह सकता है कि कृष्ण भगवान के भक्त कृष्ण लोक में प्रवेश करने का प्रयत्न कर रहे हैं और हमारी इच्छा चन्द्रमा तक जाने की है। क्या चन्द्रमा पर जाना सिद्धि नहीं है ? जीवों में अन्य लोकों की यात्रा करने का स्वभाव सदैव ही है। जीव का एक नाम 'सर्वगत' है जिसके माने है जो हर जगह जाना चाहता है। यात्रा करना जीवों के स्वभाव के अन्तर्गत है। चन्द्रमा में जाने की इच्छा कोई नवीन इच्छा नहीं है। योगी भी ऊँचे लोकों में जाने के इच्छुक हैं परन्तु भगवद् गीता कहती है कि इससे कोई भलाई नहीं है।

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ।।भ.गी.८:१६।।

"इस संसार में सवसे ऊँचे लोक (ब्रह्म लोक) से लेकर सवसे नीचे लोक (पाताल लोक) तक सभी जगह दुःखों के स्थान हैं, जहाँ बार-बार जन्म और मृत्यु होती है। परन्तु हे कुन्ती के पुत्र ! जो मेरे धाम को पा लेता है वह फिर जन्म नही लेता है।

इस विश्व का विभाजन ऊँचे, मध्यम और नीचे लोकों में

है। पृथ्वी को मध्यम लोकों का सदस्य माना जाता है। कृष्ण भगवान कहते हैं कि यदि कोई सबसे ऊँचे लोक, जिसे ब्रह्म लोक कहते हैं, उसमें पहुँच जाये फिर भी वहाँ भी जन्म और मृत्यु का चक्र चलता है। विश्व के हर लोक जीवों से पूर्ण हैं। हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि हम यहाँ हैं और अन्य लोक खाली हैं। अपने अनुभव से हम देख सकते हैं कि इस पृथ्वी में कोई स्थान जीवों से खाली नहीं है। यदि हम भूमि को गहरा खोदें तो हम कीड़े पायेंगे, यदि हम पानी में नीचे जायें तो मछलियाँ पाएँगे और यदि हम आकाश में जाएँ तो बहुत सारी चिड़ियाँ मिलेंगी। तो यह सारांश निकालना कि अन्य लोकों में कोई जीव नहीं है, यह कैसे सम्भव है ? परन्तु कृष्ण भगवान् कहते हैं कि यदि हम उन लोकों में पहुँचें जहाँ महान् देवता लोग रहते हैं, फिर भी वहाँ हमारी मृत्यु होगी। पुनः कृष्ण भगवान् दोहराते हैं कि जो उनके लोक में पहुँच जाता है, वह फिर जन्म नहीं लेता है।

हमें आनन्द और ज्ञान से पूर्ण सनातन जीवन पाने के लिए गम्भीर होना चाहिए। हम भूल गये हैं कि यही वास्तव में हमारे जीवन का उद्देश्य है और यही वास्तविक स्वार्थ है। हम क्यों भूल गये हैं ? हम केवल सांसारिक चमक—ऊँचे भवन, बड़े कार्यालय, राजनैतिक क्रीड़ा के धोखे में बँध गये हैं जबकि हम समझते हैं कि हम कितनी ही बड़ी इमारतें क्यों न बना लें, हम वहाँ अनन्त समय तक नहीं रह सकते हैं। हमें अपनी

४

परव्योम--भगवद् धाम का आकाश

यदि इस विश्व के ऊंचे लोकों में भी जन्म और मृत्यु है तो महान् योगी वहाँ जाने की क्यों चेष्टा करते हैं ? यद्यपि उनके पास अनेकों सिद्धियाँ होती हैं, फिर भी योगियों में भौतिक जीवन की सुविधाओं का आनन्द लेने का स्वभाव होता है। ऊँचे लोकों में बहुत लम्बी अवधि का जीवन सम्भव होता है। इन लोकों के समय की गणना कृष्ण भगवान् ने भगवद् गीता में दी है :

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद्‌ब्रह्मणो विदुः।
रात्रियुगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥ भ. गी. ८:१७॥

"मनुष्य लोक के हिसाब से ब्रह्मा का एक दिन हजार युगों का होता है और ऐसी ही उनकी रात्रि होती है।"

एक युग ४३ लाख वर्ष का होता है। इस संख्या को एक हजार से गुणा करके हमें ब्रह्म लोक में ब्रह्मा के बारह घण्टों का ज्ञान होता है। इसी प्रकार के दूसरे बारह घण्टे ब्रह्मा की रात्रि होती है। ऐसे तीस दिन एक महीना होते हैं और बारह महीने एक वर्ष होता और ब्रह्मा ऐसे सौ वर्षों तक जीवित रहते हैं। ऐसे लोकों में जीवन वास्तव में बहुत लम्बा होता है परन्तु ऐसे अरबों वर्षों के उपरान्त भी ब्रह्म लोक के जीवों को मृत्यु का सामना करना पड़ता है। जब तक हम

शक्ति को बड़े-बड़े कारखाने या शहर बनाने में नष्ट नहीं करना चाहिए, क्योंकि यह हमें प्रकृति के बन्धन में और बाँधेगी। हमें अपनी शक्ति का उपयोग कृष्ण भावना में प्रगति करके कृष्ण लोक जाने के लिए करना चाहिए। कृष्ण चेतना एक धार्मिक सिद्धान्त मात्र या आध्यात्मिक प्रतिक्रिया मात्र ही नहीं है, बल्कि यह जीव का अत्यन्त अपरिहार्य अंश (अङ्ग) है।

—०—

इस संसार से परे के लोक में नहीं जाते हैं, मृत्यु से कोई बचाव नहीं है।

अव्यक्ताद्व्यक्तय: सर्वा: प्रभवन्त्यहरागमे।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके ॥भ. गी. ८:१८॥

"जब ब्रह्मा का दिन प्रगट होता है सभी जीव व्यक्त हो जाते हैं और ब्रह्म की रात्रि में फिर से उनका नाश होता है।"

ब्रह्मा के दिन के अन्त में सभी नीचे के लोक पानी से ढक जाते हैं और उनके सभी जीवों का विनाश हो जाता है। इस प्रलय के बाद ब्रह्मा की रात्रि समाप्त होने के बाद प्रातः काल जब ब्रह्मा सोकर उठते हैं तब फिर से सृष्टि होती है और सभी जीव उत्पन्न हो जाते हैं। इस प्रकार सृष्टि और प्रलय इस संसार का स्वभाव है।

भूतग्राम: स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते।
रात्र्यागमेऽवश: पार्थ प्रभवन्त्यहरागमे ॥भ. गी. ८:१९॥

"ओ पृथा के पुत्र ! बार-बार दिन आता है और सभी जीव क्रियाओं में लग जाते हैं और फिर रात्रि आती है और सभी जीवों का लाचारी से विनाश हो जाता है।"

यद्यपि जीव प्रलय नहीं चाहते हैं फिर भी प्रलय आयेगी और सभी लोकों में बाढ़ आयेगी जिससे उन लोकों के सभी जीव ब्रह्मा की रात्रि में पानी में डूबे रहेंगे। परन्तु जैसे ही दिन आता है पानी चला जाता है।

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातन:।
य: स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ॥भ. गी. ८:२०॥

"लेकिन एक दूसरी प्रकृति भी है जो सनातन है, वह इस व्यक्त और अव्यक्त भूतों से परे है। वह परम है और कभी नष्ट नहीं होती है। जब इस संसार में सब चीज का विनाश हो जाता है तब भी वह मात्र वैसा ही रहता है जैसा था।

हम इस भौतिक विश्व की सीमाओं की गणना नहीं कर सकते हैं परन्तु हमारे पास वैदिक माहिती है जिससे मालूम होता है कि सम्पूर्ण सृष्टि में करोड़ों लोक हैं और इन सांसारिक लोकों के परे दूसरा आकाश है जो परम है। वहाँ सभी लोक सनातन हैं और सभी जीवों का जीवन सनातन है। इस श्लोक में 'भावः' शब्द के माने प्रकृति है और यहाँ दूसरी प्रकृति भी बताई गई है। इस संसार में हमें दो प्रकृतियों का अनुभव है। जीव आत्मा है और जब तक वे इस भौतिक शरीर के अन्दर है शरीर चलता है और जैसे ही यह जीव अर्थात् आत्मा शरीर छोड़ देता है शरीर चल नहीं सकता है। परम प्रकृति को कृष्ण भगवान् की अन्तरङ्गा प्रकृति कहते हैं और इस भौतिक विश्व को बहिरङ्गा प्रकृति कहते हैं। इस सांसारिक प्रकृति के बाहर अन्तरङ्गा प्रकृति है जो कि सर्वथा परम है। इसको प्रायोगिक ज्ञान से नहीं समझा जा सकता है। हम दूरदर्शी यन्त्र से करोड़ों तारे देख सकते हैं परन्तु हम उनके समीप नहीं पहुँच सकते हैं। हमें अपनी सीमा समझनी चाहिए। यदि हम इस भौतिक विश्व को अपने प्रायोगिक ज्ञान से नहीं समझ सकते हैं तो भगवान् और उनके राज्य को समझने की क्या सम्भावना ? यह प्रायोगिक रूप

से असम्भव है। हमें भगवद् गीता सुनकर ही समझना होगा। हम प्रायोगिक विधि से नहीं समझ सकते हैं कि हमारे पिता कौन हैं; हमें अपनी माँ के शब्दों को सुनना होगा और विश्वास करना होगा। यदि हम विश्वास नहीं करते हैं तो जानने की कोई विधि नहीं है। यदि हम कृष्ण भावना के अभ्यास में लगे रहें तो कृष्ण भगवान् और उनके अलौकिक धाम के सभी समाचार प्रकाशित हो जायेंगे।

'परः तु भावः' के माने हैं परम प्रकृति और अव्यक्त के माने है जिसे हम नहीं देख सकते हैं। हम देख सकते हैं कि यह भौतिक विश्व पृथ्वी, सूर्य, तारों और अन्य लोकों का बना है। इस विश्व के बाहर दूसरी प्रकृति है जो सनातन है। 'अव्यक्तात् सनातनः।' इस प्रकृति का प्रारम्भ है और अन्त है, परन्तु परम प्रकृति सनातन है। न तो उसका प्रारम्भ ही है और न अन्त ही। यह कैसे सम्भव है? जब बादल आकाश में आता है तो ऐसा लगता है कि उसने सम्पूर्ण आकाश को ढक लिया है परन्तु वास्तव में बादल बहुत छोटा है और उसने सम्पूर्ण आकाश के बहुत ही छोटे और महत्वहीन अंश को ढका है। क्योंकि हम इतने छोटे हैं कि यदि बादलों द्वारा कुछ सौ मील तक ढके जाते हैं तो हमें प्रतीत होता है कि सम्पूर्ण आकाश ढका हुआ है। इसी प्रकार सम्पूर्ण भौतिक विश्व अनन्त परव्योम में (वैकुण्ठ में) एक छोटे से महत्वहीन बादलों के टुकड़े जैसा है। यह भौतिक विश्व महत्तत्त्व के अन्दर बँधा है। जैसे बादलों का

प्रारम्भ और अन्त होता है उसी प्रकार इस भौतिक विश्व का प्रारम्भ और अन्त होता है, जब बादल हट जाते हैं आकाश साफ हो जाता है तो हम हर चीज को साफ-साफ देख सकते हैं। इसी प्रकार शरीर जीवात्मा पर बादलों की तरह बहता है। वह कुछ समय रहता है; कुछ वैसी ही चीजें उत्पन्न करता है, सड़ता है और अन्त में समाप्त हो जाता है। किसी सांसारिक क्रिया को जिसे हम देखते हैं उसमें छः परिवर्तन होते हैं—वह उत्पन्न होती है, बढ़ती है, कुछ समय तक रहती है, कुछ वैसी चीजें उत्पन्न करती है, सड़ती है और समाप्त हो जाती है। कृष्ण भगवान् कहते हैं कि बादल जैसी परिवर्तनशील प्रकृति के परे अलौकिक प्रकृति है, जो सनातन है। इसके अतिरिक्त जब यह सांसारिक प्रकृति समाप्त हो जायेगी तब वह 'अव्यक्तात् सनातन' रहेगा।

वैदिक साहित्य में इस संसार और वैकुण्ठ के विषय में अनेकों विवरण हैं। श्रीमद्भागवतम् के दूसरे स्कन्ध में वैकुण्ठ लोक और उसके निवासियों का वर्णन है। यहाँ तक माहिती है कि वैकुण्ठ में अलौकिक विमान हैं और मुक्त जीव इन लोकों में आकाश की बिजली की तरह तेजी से यात्रा भी कर सकते है। जो भी चीज हम यहाँ देखते हैं वह वास्तविकता में वहाँ लाई जा सकती है। इस संसार में हर चीज वैकुण्ठ की विकृत परछाइं या नकल जैसी है। जैसे सिनेमा में हम केवल वास्तविक चीज की परछाईं या छवि देखते हैं। श्रीमद्भागवतम् में लिखा है कि यह संसार द्रव्यों का संयोग है जो

वास्तविकता के आधार पर उसके जैसा बना है। जैसे दुकान की खिड़की पर लड़की की मूर्ति वास्तविक लड़की जैसी होती है। हर व्यक्ति जानता है कि मूर्ति बनावटी है। श्रीधर स्वामी कहते हैं कि क्योंकि वैकुण्ठ सत्य है, इसलिए यह संसार जो उसकी परछाईं है सत्य लगता है। हमें सत्य के माने जानना चाहिए—सत्य के माने वह स्थिति है जो समाप्त नहीं की जा सकती है, सत्य से तात्पर्य सनातन से है :

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥भ. गी. २:१६॥

"जो सत्य के दर्शक हैं उन्होंने सारांश निकाला है कि जो असत्य है वह रह नहीं सकता है और जो सत्य है उसका विनाश नहीं हो सकता है।" तत्त्वदर्शियों ने यह सारांश दोनों प्रकृतियों का अध्ययन करके ही निकाला है।

वास्तविक आनन्द कृष्ण भगवान में है और यह सांसारिक आनन्द जो अस्थाई है वह वास्तविक नहीं है। जो चीजों को सही तरह से देख सकते हैं वे परछाईं के आनन्द में भाग नहीं लेते हैं। मनुष्य जीवन का वास्तविक उद्देश्य वैकुण्ठ लोक जाना है, परन्तु जैसा श्रीमद्भागवतम् बताता है कि अधिकांश लोग इस विषय में कुछ नहीं जानते हैं। मनुष्य जीवन सत्य को समझने के लिए और उसमें प्रवेश करने के लिए बना है। सभी वैदिक साहित्य यही शिक्षा देते हैं कि अन्धकार में मत रहो। इस संसार का स्वभाव अन्धकारमय है, परन्तु वैकुण्ठ लोक सदैव प्रकाशित है यद्यपि

वहाँ बिजली या अग्नि का प्रकाश नहीं है। भगवद् गीता के पन्द्रहवें अध्याय में कृष्ण भगवान् संकेत करते हैं कि—

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ।।भ. गी. १५:६।।

"मेरा निवास स्थान सूर्य, चन्द्रमा या विद्युत से प्रकाशित नहीं होता है और जो वहाँ पहुँच जाता है वह इस संसार में फिर वापिस नहीं आता है।"

वैकुण्ठ लोक को अव्यक्त कहते हैं क्योंकि उसे इस सांसारिक इन्द्रियों से नहीं देखा जा सकता है।

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम्।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ।।भ. गी. ८:२१।।

"ये परम निवास स्थान अव्यक्त और न नाश होने वाला कहलाता है यही परम उद्देश्य है। जब कोई वहाँ जाता है वह फिर वापिस नहीं आता है। यह मेरा परम धाम है।"

इस श्लोक में महान् यात्रा की ओर संकेत है। हमें बाहरी आकाश में छेद करके बाहर जाने योग्य होना होगा, फिर इस सांसारिक विश्व को पार करके, इसके आवरणों में छेद करके वैकुण्ठ में प्रवेश करना होगा। इस पृथ्वी से कुछ हजार मील बाहर जा कर फिर वापिस आने का कोई प्रश्न नहीं है। ऐसी यात्रा कोई वीरता पूर्ण नहीं है। हमें सम्पूर्ण सांसारिक विश्व को पार करना होगा। हम यह यात्रा हवाई जहाज से नहीं कर सकते हैं बल्कि कृष्ण भावना से कर सकते हैं। जो कृष्ण भावना में मस्त हैं, जो मृत्यु काल में कृष्ण भगवान् के विषय में सोचते

हैं वे तुरन्त वहाँ पहुँच जाते हैं। यदि हम वैकुण्ठ जाना चाहते हैं और पूर्ण ज्ञानमय सनातन आनन्दमय जीवन पाना चाहते हैं तो हमें सच् चिद् आनन्द शरीर अभी ही उत्पन्न करना होगा। यह कहा गया है कि कृष्ण भगवान् का शरीर सच् चिद् आनन्द है–"ईश्वरः परमः कृष्णः सच् चिद् आनन्द विग्रहः"–हमारे पास ऐसा ही सनातन, ज्ञान और आनन्द से पूर्ण शरीर है परन्तु वह बहुत छोटा है और भौतिक पोशाक से आवरित है। किसी भी प्रकार यदि हम इस असत्य पोशाक को छोड़ने योग्य हो जायें तो हम वैकुण्ठ पहुँच सकेंगे। यदि एक बार हम वहाँ पहुँच जायें तो वापिस आना जरूरी नहीं है।

हर एक को उस परम धाम कृष्ण लोक में जाने का प्रयास करना चाहिए। भगवान् स्वयं वापिस बुलाने आते हैं, निर्देशन के लिए पुस्तकें देते हैं और अपने प्रतिनिधियों को भेजते हैं। हमें मनुष्य जीवन में इसी दी हुई सुविधा का उपयोग करना चाहिए। जो इस परम निवास स्थान में पहुँच जाता है तो फिर तपस्या, ब्रह्मचर्य, योग इत्यादि विधियों की आवश्यकता नहीं रहती है और जो वहाँ नहीं पहुँच पाते हैं उनका सभी तपस्यायें और ब्रह्मचर्य में व्यर्थ समय नष्ट करना है। मनुष्य योनि में ही इस लाभ को लेने का सुअवसर है और इस राष्ट्र के माता-पिता, गुरु, रक्षक का कर्तव्य है कि जिन्होंने मनुष्य योनि पा ली है उन्हें जीवन की इस पूर्णता में प्रगति करायें। केवल खाना, सोना, मैथुन करना और कुत्ते बिल्ली की भाँति लड़ना ही सभ्यता नहीं है। हमें इस मनुष्य योनि के जीवन

का सदुपयोग करना चाहिए और इस ज्ञान का लाभ उठाकर दिन में चौबीस घण्टे कृष्ण भगवान् के स्मरण में लगा कर कृष्ण भावना में व्यस्त रहना चाहिए और मृत्यु के समय तुरन्त वैकुण्ठ जाना चाहिए।

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।
यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ॥
(भ. गी. ८:२२)

"भगवान् परम पुरुष, जो सबसे महान् हैं, केवल अनन्य भक्ति से ही पाये जा सकते हैं। यद्यपि वे अपने निवास स्थान में हैं फिर भी वे सब जगह उपस्थित हैं और हर चीज उनमें हैं।

यदि हम सब परम निवास स्थान जाने के इच्छुक हैं तो विधि यहाँ दी गई है—वह भक्ति है। भक्ति के माने हैं भगवान् की नम्रता के साथ सेवा करना। भक्ति की धातु 'भज्' शब्द में है जिसके माने सेवा करना है। भक्ति की परिभाषा नारद पञ्चरात्र में दी गई है "सभी उपाधियों से मुक्ति।" यदि कोई सभी उपाधियों जो कि पवित्र आत्मा को मोह में रखती है, जो कि शरीर से उत्पन्न होती है और शरीर के परिवर्तित होने पर परिवर्तित होती है, उनसे मुक्ति पाने का निश्चय करता है, तो वह भक्ति पा लेता है। भक्ति के माने समझ कर अनुभव करना है कि वह पवित्र आत्मा है भौतिक शरीर नहीं है। हमारा स्वरूप यह शरीर नहीं है जो कि आत्मा का आवरण है परन्तु वास्तविक स्वरूप 'दास' है—कृष्ण भगवान् का सेवक। जब कोई इस वास्तविक पहचान में स्थिर होता है और कृष्ण

भगवान् की सेवा में लगा रहता है तो उसे भक्त कहते हैं। 'हृषीकेण हृषीकेश सेवेनम्'—जब हमारी इन्द्रियाँ सांसारिक उपाधियों से मुक्त हों तब हम उन्हें इन्द्रियों के स्वामी हृषीकेश कृष्ण भगवान् की सेवा में उपयोग करेंगे।

रूप गोस्वामी कहते हैं कि हमें कृष्ण भगवान् की सेवा उनके हित के लिए करनी चाहिए। साधारणतया हम भगवान् की सेवा कुछ सांसारिक उद्देश्य या लाभ के लिए करते हैं। यद्यपि जो भगवान् के पास सांसारिक भलाई के लिए जाता है वह उनसे कहीं अच्छा है जो भगवान् के पास कभी नहीं जाते हैं परन्तु हमें सांसारिक हित की इच्छा से मुक्त होना चाहिए। हमारा उद्देश्य कृष्ण भगवान् को समझना होना चाहिए। यद्यपि कृष्ण भगवान् अनन्त हैं और उन्हें समझना सम्भव नहीं है परन्तु जो भी हम समझते हैं हमें उसे स्वीकार करना चाहिए। भगवद् गीता विशेष रूप से हमारे समझने के लिए दी गई है। इस प्रकार ज्ञान लेने से, हमें जानना चाहिए कि कृष्ण भगवान् प्रसन्न होते हैं, और उनके आनन्द के लिए उनके हित के साथ उनकी सेवा करनी चाहिए। कृष्ण भावना एक विज्ञान है जिसमें अनन्त साहित्य हैं और इनका उपयोग हमें भक्ति पाने के लिए करना चाहिए।

'पुरुषः स परः' अलौकिक लोक में परमेश्वर परम पुरुष के रूप में हैं। वहाँ अगणित स्वयं प्रकाशित लोक हैं और हर एक में कृष्ण भगवान् का एक विष्णु रूप निवास करता है। वे चार हाथ वाले हैं और उनके अगणित नाम हैं। वे पूर्ण पुरुष हैं,

निर्विशेष नहीं हैं। ये पुरुष केवल भक्ति से ही पाये जा सकते हैं, पडकार विचारों, मानसिक तुकबन्दी या शारीरिक कसरतों से नहीं वल्कि बिना कर्म फल की इच्छा वाली भक्ति से ही पाये जा सकते हैं।

पुरुष क्या है ? परम पुरुष कैसे हैं ? 'यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वं इदम् ततम्'--हर चीज और हर जीव उनके अन्दर हैं परन्तु वे उनके वाहर हैं सव जगह उपस्थित हैं। यह कैसे है ? वे ठीक सूर्य की भाँति हैं जो एक स्थान पर स्थिर है परन्तु फिर भी वह अपनी किरणों से हर जगह उपस्थित है। यद्यपि भगवान् अपने परम निवास स्थान में हैं परन्तु उनकी शक्तियाँ सव जगह विस्तृत हैं। न वे अपनी विभूति से ही भिन्न हैं जैसे सूर्य और उसकी किरण एक दूसरे से भिन्न नहीं हैं। क्योंकि कृष्ण भगवान् और उनकी शक्ति विभिन्न नहीं है इसलिए यदि हम भक्ति योग में प्रगति कर लें तो हम कृष्ण भगवान् को हर जगह देख सकते हैं।

प्रेमांजनच्छुरित भक्ति विलोचनेन।
सन्तः सदैव हृदयेषु विलोकयन्ति॥

(ब्रह्म संहिता ५:३८)

"मैं आदि परमपुरुष गोविन्द की पूजा करता हूँ जिन्हें अनन्य भक्त जिनकी आँखें भगवान् के प्रेम के काजल से भरी होती हैं वे उन्हें अपने हृदय में देखते हैं।"

जो भगवान् के प्रेम से भरे होते हैं वे भगवान् को लगातार अपने समक्ष देखते हैं। ऐसा नहीं है कि कल रात्रि को हमने

भगवान् को देखा था और अब वे नहीं हैं। नहीं, जो कृष्ण भावनामय हैं उनके लिए भगवान् सदैव उपस्थित हैं और लगातार देखे जा सकते हैं। हमें देखने के लिए योग्य आँखें बनानी हैं।

इस सांसारिक बन्धन के कारण तथा इन भौतिक इन्द्रियों के आवरण के कारण हम नहीं समझ सकते हैं कि आत्मा क्या है, परन्तु यह अज्ञान हरे कृष्ण के कीर्तन की विधि से हटाया जा सकता है। यह कैसे है ? सोता हुआ व्यक्ति शब्द की ध्वनि से जगाया जा सकता है। यद्यपि मनुष्य पूरी तरह से अचेतन हो या सो रहा हो, वह न देख सकता हो, न अनुभव कर सकता हो, न सूँघ सकता हो इत्यादि—परन्तु सुनने की इन्द्रिय इतनी प्रभावशाली है कि सोता हुआ व्यक्ति केवल शब्द ध्वनि से ही जगाया जा सकता है। इसी प्रकार आत्मा जो सांसारिक स्पर्श की निद्रा के वश में है वह "हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे, हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे" की परम शब्द ध्वनि से जाग्रत की जा सकती है। हरे कृष्ण मन्त्र भगवान् और उनकी शक्ति को सम्बोधित करता है। 'हरे' से तात्पर्य शक्ति से है और कृष्ण के माने भगवान् से है, इसलिए जब हम हरे कृष्ण का कीर्तन करते हैं तो हम कहते हैं "हे भगवान् की शक्ति ! हे भगवान् ! मुझे स्वीकार करो।" हमारे पास भगवान् द्वारा स्वीकृत किये जाने के लिए इस महामन्त्र के अतिरिक्त कोई अन्य प्रार्थना नहीं है। रोज के भोजन के लिए प्रार्थना करने

का कोई प्रश्न नहीं है भोजन तो सदैव ही है। 'हरे कृष्ण' भगवान् को सम्बोधन करके प्रार्थना करने के लिए है कि वे हमें स्वीकार करें। चैतन्य महाप्रभु ने स्वयं प्रार्थना की थी—

अयि नन्दतनुज किङ्करं पतितं मां विषमे भवाम्बुधौ।
कृपया तव पादपङ्कजस्थितधूलीसदृशं विचिन्तय॥
(शिक्षाष्टकम् ५)

"हे नन्द महाराज के पुत्र ! मैं आपका सनातन दास हूँ और ऐसा होने के बावजूद भी मैं किसी न किसी तरह इस जन्म और मृत्यु के सागर में गिर गया हूँ। कृपा करके आप मुझे इस जन्म और मृत्यु के सागर से ऊपर उठाइये और अपने चरणों की धूल में रखिये।"

समुद्र के मध्य पड़े व्यक्ति की केवल यही आशा होती है कि कोई आयेगा और ऊपर उठायेगा। यदि कोई आता है—और पानी से कुछ फिर ऊपर उठाता है तो तुरन्त शान्ति मिल जाती है। इसी प्रकार यदि हम इस जन्म और मृत्यु के सागर से कृष्ण भावना की विधि से ऊपर उठाये जाते हैं तो हमें तुरन्त शान्ति मिल जाती है।

यद्यपि हम भगवान्, उसके नाम, उनकी प्रसिद्धि, और उनके कार्यों की परम प्रकृति को नहीं देख सकते हैं फिर भी यदि हम अपने आपको कृष्ण भावना में स्थिर करें तो भगवान् धीरे-धीरे स्वयं प्रकाशित होंगे। हम भगवान् को अपनी चेष्टा से नहीं देख सकते हैं परन्तु यदि हम योग्य बन जायें तो भगवान् स्वयं प्रकाशित होंगे और तब हम उन्हें देखेंगे।

कोई भगवान् को आज्ञा नहीं दे सकता है कि भगवान् आओ और नाचो, परन्तु हमें इस प्रकार कार्य करना चाहिए कि कृष्ण भगवान् प्रसन्न होकर स्वयं प्रकाशित होंगे।

कृष्ण भगवान् भगवद् गीता में अपने विषय में माहिती देते हैं, इसमें संशय करने का कोई प्रश्न नहीं है; हमें केवल अनुभव करना है और समझना है। भगवद् गीता को समझने के लिए किसी प्रारम्भिक योग्यता की आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह परमेश्वर से बोली गई है। केवल कृष्ण भगवान् के नाम के कीर्तन की सीधी सादी विधि ही एक के बाद एक हर चीज को प्रकाशित करेगी कि कोई क्या है, भगवान् क्या हैं, यह संसार और वैकुण्ठ क्या है, हम बन्धन में क्यों हैं, हम इस बन्धन से मुक्ति कैसे पा सकते हैं–वास्तव में पहले श्रद्धा और बाद में प्रकाशित होना यह विधि हमारे लिए कोई विदेशी बात नहीं है। हर दिन हम किसी न किसी चीज पर जिसमें भरोसा होता है विश्वास करते हैं और जो बाद में प्रकाशित होती है। हम भारत जाने के लिए टिकिट खरीद लेते हैं और टिकिट के कारण हमें विश्वास हो जाता है कि हमें वहाँ ले जाया जायेगा। हम टिकिट के लिए धन क्यों दें ? हम हर किसी को तो धन नहीं देते हैं। कम्पनी मानी हुई है, वायु—सेवा मानी हुई है इसलिए विश्वास उत्पन्न हो जाता है। हम साधारण जीवन में बिना विश्वास किये एक कदम आगे नहीं बढ़ा सकते हैं। हमें विश्वास होना चाहिए परन्तु वह विश्वास किसी मानी हुई वस्तु पर होना

चाहिए। यह नहीं कि हमें अन्ध विश्वास है, हम उसी को स्वीकार करते हैं जो माना हुआ है। भगवद् गीता माना हुआ शास्त्र है और भारत में हर श्रेणी के लोग इसे शास्त्र के रूप में स्वीकार करते हैं और जहाँ तक भारत के बाहर का प्रश्न है अनेकों विद्यार्थियों ने, धर्मवेत्ताओं ने, और विचारकों ने भगवद् गीता को महान् पुस्तक माना है। भगवद् गीता की महानता पर कोई प्रश्न नहीं है। अल्बर्ट आइन्सटीन जैसे वैज्ञानिक्ङ नित्य भगवद् गीता का पाठ करते थे।

भगवद् गीता से हमें स्वीकार करना होगा कि वैकुण्ठ लोक है जो भगवान् का राज्य है। यदि हमें किसी प्रकार उस देश में ले जाया जाये जहाँ हमें सूचना मिले कि हमें जन्म, मृत्यु वृद्धावस्था और बीमारी के चक्र में फिर से नहीं आना पड़ेगा तो क्या हम सुखी नहीं होंगे ? यदि हमें ऐसे स्थान के विषय में सूचना मिले तो अवश्य ही हम वहाँ पहुँचने के लिए जितना प्रयत्न करना सम्भव हो करेंगे। कोई वृद्ध होना नहीं चाहता है, कोई मरना नहीं चाहता है। वास्तव में वह जगह जो इन दुःखों से दूर हो वहाँ जाने की ही हमारे हृदय में इच्छा होगी। हम इसे क्यों चाहते हैं ? क्योंकि हमें अधिकार है यही हमारी मुख्य सुविधा है और हम वही चाहते हैं। हम सनातन हैं, आनन्दमय हैं ज्ञान से पूर्ण हैं परन्तु सांसारिक बन्धन में फँस गये हैं, हम अपने आप को भूल गये हैं। भगवद् गीता हमें अपने स्वरूप को जाग्रत करने की सुविधा देती है।

शंकराचार्य और बुद्ध मत का अनुसरण करने वाले कहते हैं कि इस संसार के बाद केवल शून्य है। परन्तु भगवद् गीता हमें इस प्रकार निराश नहीं करती है। शून्यवाद के विचारों ने केवल नास्तिकता उत्पन्न की है। हम सच्चिदानन्द जीव हैं और हम आनन्द चाहते हैं परन्तु जैसे ही हमें पता लगता है कि हमारा भविष्य शून्य है तो हम इस सांसारिक जीवन में आनन्द लेंगे। इस प्रकार निर्विशेषवादी लोग शून्यवाद के विचार पर विवाद करते हैं और साथ ही साथ इस सांसारिक जीवन में जितना आनन्द लेना सम्भव हो लेते हैं। इस तरह से कोई इन मानसिक कल्पनाओं में आनन्द ले सकता है परन्तु इससे कोई आध्यात्मिक हित नहीं है।

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् भ.गी. १८:५४

"जो ब्रह्मभूत के स्तर पर है वह तुरन्त परब्रह्म को जानता है। वह न तो दुःख ही करता है और न किसी चीज की इच्छा ही करता है। वह हर जीव के साथ बराबर व्यवहार करता है। ऐसी स्थिति में उसे मेरी अनन्य भक्ति प्राप्त होती है।

जो भक्ति के जीवन में प्रगति कर रहा है, जो कृष्ण भगवान् की सेवा का आनन्द ले रहा है वह सांसारिक आनन्द से स्वयं ही विरक्त हो जायेगा। जो भक्ति में व्यस्त है उसका लक्षण यह है कि वह कृष्ण भगवान से ही पूर्ण रूप से सन्तुष्ट है।

५

कृष्ण भगवान् का संग करना

यदि कोई किसी उच्च श्रेणी की वस्तु को पाता है तो यह स्वाभाविक है कि वह निम्न श्रेणी की वस्तु को त्याग देगा। हम आनन्द चाहते हैं परन्तु निर्विशेषवादियों और शून्य वादियों ने ऐसा वातावरण उत्पन्न किया है कि हम सांसारिक आनन्द की वस्तुओं के अभ्यस्त हो गये हैं। आनन्द परमेश्वर के साथ आमने सामने बैठकर, उनसे बातें करते हुए ही प्राप्त होना चाहिए। वैकुण्ठ में हम भगवान से वार्तालाप करने, उनके साथ खेलने, उनके साथ खाने इत्यादि के योग्य होते हैं। यह सब भक्ति या परम प्रेम पूर्वक सेवा करने से ही प्राप्त किया जा सकता है। परन्तु इस सेवा में कोई मिलावट नहीं होनी चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है कि भगवान से प्रेम, बिना किसी सांसारिक लाभ की आशा से करना चाहिए। भगवान से एक होने के लिए प्रेम करना भी एक प्रकार की मिलावट है।

अलौकिक जगत् या वैकुण्ठ और इस भौतिक जगत् में एक मुख्य भिन्नता यह भी है कि वैकुण्ठ लोक का एक ही प्रधान या नेता होता है और उनका कोई विरोधी नहीं होता है। हर स्थिति में वैकुण्ठ लोक में प्रमुख व्यक्ति कृष्ण भगवान्

का ही कोई रूप (विष्णु) है। भगवान् और उन्हीं के विभिन्न अवतार विभिन्न वैकुण्ठ लोकों में रहते हैं। उदाहरण के लिए इस पृथ्वी में राष्ट्रपति या मुख्य मन्त्री की पदवी के लिए विरोधी होते हैं परन्तु वैकुण्ठ में हर कोई भगवान् को ही सर्वश्रेष्ठ स्वीकार करता है। जो उनको नहीं मानते हैं या विरोध करने का प्रयत्न करते हैं वे इस संसार में भेज दिये जाते हैं जो कि कारगार की भाँति है। हर शहर में कारगार होता है और कारगार शहर का बहुत ही छोटा भाग होता है। इस प्रकार यह संसार भी बँधी हुई आत्माओं के लिए कारगार है। यह वैकुण्ठ का बहुत छोटा भाग है और यह वैकुण्ठ से बाहर नहीं है जैसे कारगार शहर से बाहर नहीं होता है।

अलौकिक जगत् में वैकुण्ठ लोक के सभी निवासी मुक्त जीव हैं। श्रीमद्भागवतम् से हमें ज्ञात होता है कि उनका शरीर बिल्कुल भगवान् के जैसा है। इनमें से कुछ लोकों में भगवान् के दो हाथ हैं और अन्य में चार हाथ हैं। इन लोकों के निवासी भगवान् की तरह दो या चार हाथों वाले हैं और यह कहा जाता है कि उनमें और भगवान् में कोई भिन्नता नहीं देख सकता। वैकुण्ठ में पाँच प्रकार की मुक्तियाँ होती हैं। सायुज्य मुक्ति एक प्रकार की मुक्ति है जिसमें कोई भगवान् के अव्यक्त रूप ब्रह्म में मिल जाता है। दूसरी तरह की मुक्ति सारूप्य मुक्ति है जिसमें किसी को भगवान्

जैसा ही स्वरूप मिलता है। और एक प्रकार की मुक्ति सालोक्य मुक्ति कहलाती है जिसमें कोई उसी लोक में रहता है जहाँ भगवान् निवास करते हैं। सार्ष्टि मुक्ति में किसी के पास वही ऐश्वर्य होते हैं जो भगवान् के पास होते हैं। दूसरी प्रकार की मुक्ति में कोई सदैव भगवान् के साथ रहता है—जैसे अर्जुन सदैव कृष्ण भगवान के साथ मित्र की तरह रहता था। हर एक को इनमें से किसी भी प्रकार की मुक्ति मिल सकती है परन्तु इन पाँचों में से सायुज्य मुक्ति, भगवान के अव्यक्त रूप में मिलना भक्तों को कभी भी स्वीकार्य नहीं है। वैष्णव भगवान् की उनके वास्तविक रूप में पूजा करना चाहते हैं और अपने व्यक्तित्व को उनकी सेवा के लिए अलग रखना चाहते हैं, जबकि मायावादी निर्विशेषवादी विचारक अपने व्यक्तित्व को खोना और ब्रह्म की स्थिति में प्रवेश करके मिल जाना चाहते हैं। इस प्रकार मिल जाने से न तो कृष्ण भगवान् ही भगवद् गीता में सहमत हैं और न महान् वैष्णव आचार्य लोग ही जो कि गुरु परम्परा से आये हैं। चैतन्य महाप्रभु ने शिक्षाष्टकम् में इस विषय पर इस प्रकार लिखा है—

न धनं न जनं न सुन्दरीं कवितां वा जगदीश कामये।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद्भक्तिरहैतुकी त्वयि॥

"हे सर्व शक्तिमान् भगवान्! मुझे धन एकत्रित करने की इच्छा नहीं है न सुन्दर नवयुवतियों के साथ आनन्द लेने की ही इच्छा है और न मुझे किसी शिष्य की ही इच्छा है। मैं

केवल यही चाहता हूँ कि आप मुझे अपनी भक्ति और सेवा में हरेक जन्म में लगाये रखिये।" (शिक्षाष्टकम्—४)

यहाँ चैतन्य महाप्रभु 'हरेक' जन्म शब्द का उपयोग करते हैं। जब हरेक जन्म है तो मुक्ति नहीं है। मुक्ति के बाद या तो कोई अलौकिक जगत् में जाता है या परम सत्य में मिल जाता है। किसी भी प्रकार इस संसार में फिर जन्म लेने का प्रश्न नहीं है। परन्तु चैतन्य महाप्रभु इस बात की चिन्ता नहीं करते हैं कि मुक्ति मिले या नहीं। उनका सम्बन्ध केवल कृष्ण भावना में व्यस्त रहने से है और भगवान् की सेवा करने से है। भक्त इसकी चिन्ता नहीं करते हैं कि वे कहाँ हैं और न इसकी ही चिन्ता करते हैं कि उनका जन्म जानवरों के समाज में हो, मनुष्यों के समाज में हो देवताओं के समाज में हो या कहीं और हो, वे भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि वे उन्हें न भूलें और सदैव उनकी भक्ति में लगे रहने योग्य रहें। ये शुद्ध भक्ति के लक्षण हैं। यद्यपि भक्त कहीं भी होये वे इस सांसारिक शरीर के होते हुए भी वैकुण्ठ में रहते हैं। परन्तु वे अपनी सद्गति के लिए या आराम के लिए भगवान् से कुछ नहीं माँगते हैं।

यद्यपि कृष्ण भगवाम् कहते हैं कि जो उनकी भक्ति में लगे हैं वे सरलता से उनके पास पहुँच सकते हैं परन्तु योगी जो अन्य योग विधियों का अभ्यास करते हैं उन्हें सदैव ही असफलता का भय रहता है। उनको शरीर छोड़ने के

सही समय का निर्देशन कृष्ण भगवान् ने भगवद् गीता में दिया है :

यत्रकाले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः ।
प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ ।।भ. गी. ८:२३।।

"ओ भरत के वंशजों में श्रेष्ठ ! अब मैं तुम्हें उन विभिन्न कालों का वर्णन बताऊँगा जिन समयों में इस संसार से मृत्यु होने पर कोई वापिस आता है या नहीं आता है ।"

यहाँ कृष्ण भगवान् बतलाते हैं कि यदि कोई विशेष समय में यह शरीर छोड़ने योग्य हो जाये तो वह मुक्ति पा लेगा । और वह फिर इस संसार में वापिस नहीं आयेगा । इसके अतिरिक्त वे यह भी बतलाते हैं कि यदि कोई दूसरे समय में मरे तो वह फिर वापिस आयेगा । यहाँ अवसर की बात है परन्तु भक्त जो सदैव कृष्ण चेतना में हैं उनके लिए अवसर का कोई प्रश्न नहीं है, उनके लिए कृष्ण लोक में प्रवेश करना भगवान् की भक्ति के कारण निश्चय है ।

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्मविदो जनाः ।।भ.गी.८:२४

"जो परम ब्रह्मन् को जानते हैं वे अग्नि देवता के प्रभाव में प्रकाश में,शुभ अवसर में, शुक्ल पक्ष में या उन छः महिनों में जब सूर्य उत्तर में रहता है, मरते हैं ।"

सूर्य छः महिने शून्य अक्षांश के उत्तर में रहता है और छः महिने दक्षिण में रहता है । श्रीमद्भागवतम् में समाचार है कि जैसे सभी ग्रहें चक्कर लगाते हैं वैसे ही सूर्य भी चक्कर

लगाता है। यदि कोई उस समय मरता है जब कि सूर्य उत्तरायण में होता है तो वह मुक्ति पाता है।

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम्।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते ॥
शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते।
एकया यात्यनावृत्तिमन्यया वर्तते पुनः ॥
(भ. गी. ८:२५, २६)

"अष्टाङ्ग योगी जो इस संसार से धुँए में रात्रि में, कृष्ण पक्ष में, या उन छः महिने जब सूर्य दक्षिण में होता है मरते हैं जो चन्द्र लोक तक जाते हैं वे फिर वापिस आते हैं। वेदों के अनुसार इस संसार में मरने की दो विधियाँ हैं—एक प्रकाश में और दूसरा अन्धकार में। जो प्रकाश में मरते हैं वे वापिस नहीं आते हैं और जो अन्धकार में मरते हैं वे वापिस आते हैं।

यह सब अवसर की बात है। हम नहीं जानते हैं कि हम कब मरने वाले हैं। हम दुर्घटना से कभी भी मर सकते हैं। परन्तु जो भक्ति योगी हैं जो कृष्ण भक्ति में स्थिर हैं उनके लिए अवसर का कोई प्रश्न नहीं है। उनके लिए सदैव निश्चय है—

नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन ॥
(भ. गी. ८:२७)

"हे अर्जुन! भक्त जो इन दोनों मार्गों को जानते हैं वे कभी भी धोखे में नहीं रहते हैं। इसलिए वे सदैव भक्ति में स्थिर रहते हैं।"

यह पहले ही कहा जा चुका है कि यदि कोई मृत्यु के समय कृष्ण भगवान् के विषय में सोचे तो वह तुरन्त ही कृष्ण लोक भेजा जाता है।

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स यद्भावंयाति नास्त्यत्र संशयः॥
(भ. गी. ८:५)

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन्॥
(भ. गी. ८:८)

"जो मृत्यु के समय मेरा स्मरण करके शरीर छोड़ता है वह तुरन्त मेरी प्रकृति पा लेता है। इसमें कोई संशय नहीं है। हे अर्जुन! जो परमेश्वर का ध्यान करता है, जिसका मस्तिष्क सदैव मेरे स्मरण में व्यस्त रहता है और जो इस मार्ग से नहीं हटता है वह निश्चय ही मेरे पास पहुँचता है।"

कृष्ण भगवान् में ऐसा ध्यान लगाना कठिन लगता है परन्तु वास्तव में यह ऐसा नहीं है। यदि कोई "हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे,हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे–" महामन्त्र का कीर्तन करते करते कृष्ण भावना का अभ्यास करे तो भगवान् उसकी सहायता तुरन्त करेंगे। कृष्ण भगवान् और उनका नाम विभिन्न नहीं है। कृष्ण भगवान् और उनका निवास स्थान भी विभिन्न नहीं है। शब्द ध्वनि से हम कृष्ण भगवान् की सङ्गत में रह सकते हैं। उदाहरण के लिए अब हम सड़क पर हरे कृष्ण का कीर्तन करते हैं तो कृष्ण भगवान् हमारे साथ

चलते हैं जैसे जब हम ऊपर देखते हैं तो हमें लगता है कि चन्द्रमा हमारे साथ चल रहा है। यदि कृष्ण भगवान् की माया शक्ति हमारे साथ चलती है तो क्या यह सम्भव नहीं है कि जब हम उनके नाम का कीर्तन करें तो कृष्ण भगवान् स्वयं हमारे साथ रहें ? वे हमारे साथ रहेंगे परन्तु हमें उनकी सङ्गत के योग्य बनना चाहिए। यदि किसी प्रकार हम कृष्ण भगवान् के विचार में मशगुल हो जायें तो हमें निश्चित रहना चाहिए कि कृष्ण भगवान् हमारे साथ हैं। चैतन्य महाप्रभु प्रार्थना करते हैं—

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति।
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः॥
एतादृशी तव कृपा भगवन्ममापि।
दुर्दैवमीदृशमिहाजनि नानुरागः॥ २॥

"हे मेरे भगवान् ! आपका पवित्र नाम ही हर जीव का कल्याण कर सकता है इसलिए आपके हजारों और करोड़ों नाम हैं जैसे—कृष्ण, गोविन्द इत्यादि। इन परम नामों में आपने अपनी सभी परम शक्तियाँ भर दी हैं और इन नामों के कीर्तन करने के लिए कोई विशेष नियम भी नहीं हैं। हे मेरे भगवान् ! आपने अपने नामों से इतनी सरलता से अपने आप को पाने योग्य बना लिया है परन्तु मैं इतना अभाग्यवान् हूँ कि मुझे इनसे कोई अनुराग नहीं है।

केवल कीर्तन से ही हम भगवान् की सङ्गत के सभी लाभ पा सकते हैं। चैतन्य महाप्रभु जो केवल एक महान् आत्मदर्शी

सन्तपुरुष ही नहीं बल्कि कृष्ण भगवान् के अवतार माने जाते हैं उन्होंने कहा है कि यद्यपि कलियुग में आत्म निर्वाण की कोई वास्तविक सुविधा नहीं है फिर भी कृष्ण भगवान् इतने दयालु हैं कि उन्होंने यह "शब्द" (यानि ध्वनि अवतार) युग धर्म के रूप में दिया है। यही इस युग की आत्म निर्वाण की विधि है। इस विधि के लिए किसी विशेष योग्यता की आवश्यकता नहीं है, हमें संस्कृत भाषा जानने की भी आवश्यकता नहीं है। हरे कृष्ण की ध्वनि इतनी शक्तिशाली है कि कोई भी बिना संस्कृत भाषा के ज्ञान के कीर्तन प्रारम्भ कर सकता है :

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम्।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम्॥

(भ. गी. ८:२८)

"जो व्यक्ति भक्ति योग के मार्ग को स्वीकार करता है वह वेद के अध्ययन, यज्ञ, तपस्या, दान, पुण्य कर्म, ज्ञान योग या कर्म योग के फलों से वञ्चित नहीं रहता है वह अन्त में परम निवास स्थान पहुँचता है।

यहाँ कृष्ण भगवान् कहते हैं कि वेदों के अध्ययन का उद्देश्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य पाना है। वह भगवान के पास वापस जाना है। सभी देश के सभी शास्त्रों का यही उद्देश्य है। यही सभी धार्मिक सुधारकों और आचार्यों का सन्देश है। उदाहरण के लिए पाश्चात्य देश में इशु ख्रिस्त ने भी इसी सन्देश का प्रचार किया था। इसी प्रकार बुद्ध और मोहम्मद ने भी।

कोई यह मत नहीं देता है कि इस संसार में सदैव रहने का प्रबन्ध करो। विभिन्न देशकाल, परिस्थिति या शास्त्र के कारण थोड़ी सी भिन्नता भले ही हो परन्तु मुख्य सिद्धान्त यह है कि हम इस संसार के लिए नहीं बने हैं। सभी योगियों ने वैकुण्ठ को स्वीकार किया है। आत्मा की आन्तरिक इच्छा की संतुष्टि के सभी चिह्न जन्म-मृत्यु से परे कृष्ण भगवान् के धर्मों की ओर मार्ग दर्शन कर रहे हैं।

समाप्त

३१
भगवत्कृपामय
श्रील ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद
संस्थापक आचार्य अन्तर्राष्ट्रीय श्रीकृष्ण भावना सङ्घ